R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 004/2019-21

जनवरी 2021

अंक 12

तपोभूमि

मासिक

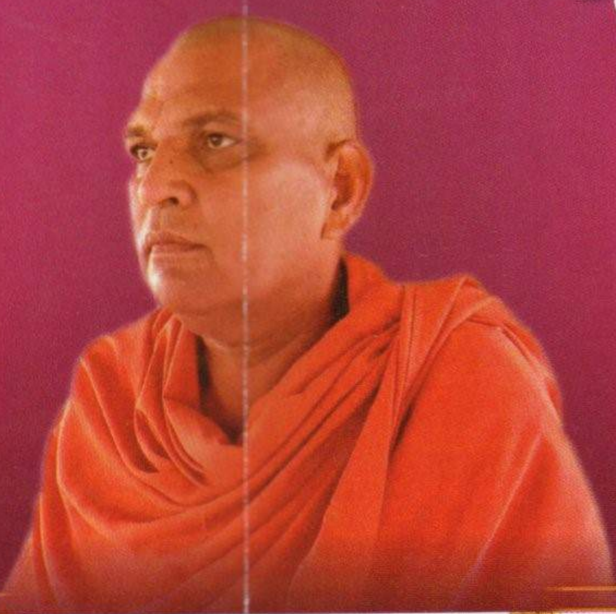

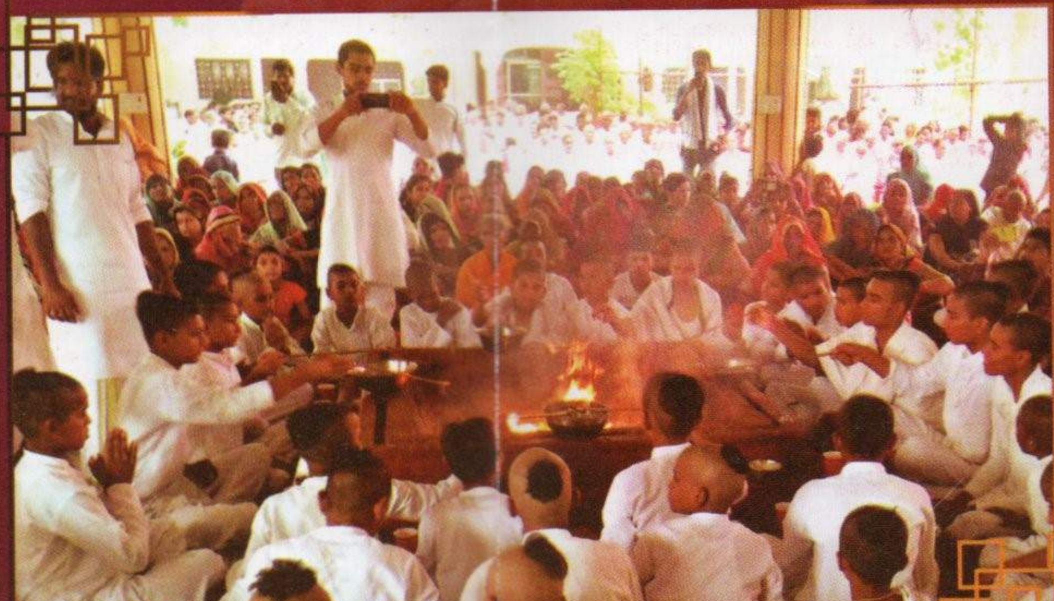

चतुर्वेद पारायण यज्ञ की झाँकी

चतुर्वेद पारायण यज्ञ उत्साह-सहित सम्पन्न

आपके अपने गुरुकुल वेदमन्दिर मथुरा में गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी चतुर्वेद पारायण यज्ञ का कार्यक्रम 6 दिसम्बर से 25 दिसम्बर तक निरन्तर श्रद्धापूर्वक वातावरण में चला। गुरुकुल वृन्दावन और आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर मथुरा के ब्रह्मचारियों ने वेदपाठ सहित सभी व्यवस्थाओं को उत्तम प्रकार से संभाला। सभी कार्यकर्त्ता पूर्णनिष्ठा से समर्पित रहें। वानप्रस्थों और संन्यासियों की गरिमामयी उपस्थिति ने कार्यक्रम की शोभा को कई गुना बढ़ाया भजनोपदेशकों में श्री देवमुनिजी, अकबरपुर मथुरा, श्री उदयवीर जी उस्फार मथुरा, श्री धर्मवीर जी कोसी मथुरा, श्री हरदेव जी बरेली, श्री लाखनसिंह मथुरा, श्री अमीचन्द जी मीतरौल (पलवल), श्री राजवीर जी ढोलकवादक आदि ने अपने भजनों के माध्यम से निरन्तर लोगों का मार्गदर्शन किया। ब्रह्मचारी राष्ट्रवसु, ब्रह्मचारी ऋतिक ने भी भजनों के माध्यम से वैदिक सिद्धान्तों की प्रस्तुति और ब्रह्मचारी सुधीर जी ढोलक के साथ इनकी संगति की। ब्रह्मचारी आकाश शास्त्री, ब्रह्मचारी देवेश आर्य, ब्र. केशव आर्य, ब्र. माधव आर्य ने मिलकर वेदपाठ किया। ब्र. जयपाल, ब्र. रवि आर्य, ब्र. अनिल आर्य, ब्र. कृष्णकुमार, ब्र. अवनीश, ब्र. त्रिवेन्द्र आर्य, ब्र. दिव्यानन्द, ब्र. राजकुमार आर्य एवं ब्र. अभिषेक, ब्र. प्रहलादादि सभी ब्रह्मचारियों ने व्यवस्थाओं को संभाला।

जिन यजमानों ने अधिकतर सहयोग या समय दिया उनमें श्री कृष्णवीर जी शर्मा, श्री मेजर धमेन्द्रनाथ सक्सैना, श्री विनोद चौधरी बाजना, श्री शिवदीप जी अडींग, श्री भानुप्रताप मलिक मथुरा, श्री भानुप्रताप यादव भरतपुर, श्री सत्यवीरसिंह मण्डी सचिव खैर, श्री ओमशरण जी के साथ सिरसागंज के सभी श्रद्धालु, श्री शिवनन्दन जी एटा, श्री नेत्रपाल जी प्रधान आर्यसमाज के साथ आये, सभी एटा के श्रद्धालुजन, आगरा से श्री वीरेन्द्र कनवर एवं सभी श्रद्धालुजन, हाथरस से श्रीमती बीना वानप्रस्थ एवं सभी श्रद्धालुजन, हरदुआगंज से श्री वीरेन्द्र जी एवं श्रद्धालुजन, अलीगढ़ से श्री पंकज आर्य, श्री भूदेवमुनि, श्री राजकुमार सारस्वत, श्री भूदेव शर्मा एवं श्रद्धालुजन, गुडगाँव से श्री दिनेश जी नागपाल, श्री नरेन्द्रसिंह यादव व श्रद्धालुजन, श्री अवनीश जी सहारनपुर, श्री अशोक जी ककुआ, श्री बदनसिंह बघेल भिण्ड, श्री नवीन सहगल लखनऊ, श्री अवधेश जी कन्नौज एवं समस्त श्रद्धालु, श्रीमती रजनी यादव शिकोहाबाद, श्री दिलीप यादव एम. एल. सी. फिरोजाबाद, श्री वीरेन्द्र जी चौधरी अनूपशहर, श्री सुखवीर नौएडा, श्री दयाशंकर जी सम्भल, श्री रामखिलाड़ी पूर्व विधायक गुन्नौर, श्री सरदारसिंह पूर्व मन्त्री भारत सरकार, श्री कुशलपालसिंह पूर्व विधायक, श्री प्रदीप माथुर पूर्व विधायक, श्री अनूप

-(शेष पृष्ठ संख्या 35 पर)

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्०)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–66 संवत्सर 2077 जनवरी 2021 अंक 12

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

जनवरी 2021

सृष्टि संवत्
1960853120

दयानन्दाब्द: 196

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा0 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
मानस के अनुसार गृहस्थाश्रम	–रामस्वरूप आर्य	5–7
स्वास्थ्य चर्चा	–	8–9
महर्षि दयानन्द के जीवन में कितनी	–खुशहालचन्द्र आर्य	10–13
मानव जीवन का आदर्श:	–डॉ0 भवानीलाल भारतीय	14–16
शिक्षा एवं गुरु शब्दों की निरुक्ति	–जगन्नाथ वेदालंकार	17–19
दृढ़निश्चयी बालक गंगाराम	–	19
सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर पतन	–डॉ0 भवानीलाल भारतीय	20–21
बालकों को शिक्षा	–रामचन्द्र शास्त्री विद्यालंकार	22
सच्ची सीख	–	23
छोटे बालक की सच्चाई	–	24
गोमूत्र और गोमय से रोगनिवारण	–	25–28
पारिवारिक व्रत एवं आचरण	–	29–32
तुम्हारा कर्तव्य	–	33
कहाँ गये थे आदर्श महान	–	34

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

नैर्बाध्य हवि

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति।
नैर्बाध्य न हविषेन्द्र एनं पराशरीत्॥

–अथर्व0 6। 75। 1

शब्दार्थः–

(निर् नुदे) निकाल देता हूँ, (अमुम्) उसे (ओकसः) घर से (सपत्नः) एक साथ आ टूटनेवाला शत्रु (यः) जो (पृतन्यति) सेना से हमला बोला है। (नैर्बाध्येन हविषा) निर्बाधित करने के अर्थात् निकाल बाहर करने के गुण से (इन्द्रः) इन्द्र, वीर (एनम्) इसे (पराशरीत्) नष्ट कर देवे।

भावार्थः–

हमारे जीवन–मार्ग में मित्र भी आते हैं और शत्रु भी। मित्र हमारा स्वागत और अभिनन्दन करते हैं, हम पर अपनी सहृदयता बरसाते हैं, हमसे मधुर तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं, हम पर अपनी सद्भावना न्यौछाबर करते हैं और हमें अपने से अधिक उन्नत हुआ देखकर प्रसन्न होते हैं। शत्रु हमें जीवित देखना नहीं चाहते, हम पर अपना धनुष तानते हैं। हमारे लिए अपनी तलवार तेज करते हैं, हम पर वज्रपात करना चाहते हैं, सेना सँजोकर हम पर आक्रमण करते हैं। वेद कहता है कि जो शत्रु सेना द्वारा हमला करता है, उस पर मैं भी आक्रमण करता हूँ, और जिस घर में बैठकर वह बन्दूक चला रहा है, उस घर से उसे बाहर निकालकर मैदान में खड़ा कर देता हूँ, जिससे हमारे शस्त्रास्त्रों से घायल होकर वह धराशायी हो जाये। शत्रु के लिए मन्त्र में 'सपत्न' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'सपत्न' वह शत्रु कहलाता है, जो अन्य शत्रुओं के साथ मिलकर धावा बोलता है। ऐसे शत्रु को हमारा इन्द्र अर्थात् प्रधान सेनापति 'नैर्बाध्य हवि' द्वारा पराशीर्ण कर देवे। 'नैर्वाध्य हवि' का तात्पर्य है शत्रु को निकाल बाहर करने का गुण या शत्रु को निर्बाधित करने के उद्देश्य से राष्ट्र के लिए किया गया आत्मोत्सर्ग।

आज से मैं प्रण करता हूँ कि शत्रु को मैं किसी भी मूल्य पर सहन नहीं करूँगा। न केवल बाह्य शत्रु को, अपितु हमारे अन्दर जो कामक्रोधादि शत्रु पनप रहे हैं, उन्हें भी बाहर निकालकर अपने संकल्प–बल से धराशायी कर दूँगा। इस प्रकार हमारा राष्ट्र और हमारा आत्मा दोनों निष्पन्न होकर निश्चिन्तता के साथ अपनी–अपनी विजय–यात्रा में संलग्न होंगे। ❁

मानस में नारी की निन्दा या प्रतिष्ठा

लेखकः रामस्वरूप आर्य, एटा (उ. प्र.)

मान्यवर! रामचरितमानस एक काव्य है। काव्य लेखक उसके पात्रों के अनुरूप ही उनका चरित्र-चित्रण करता है। ठीक वैसा ही श्री गोस्वामी जी महाराज ने किया है। कोई अतिशयोक्ति नहीं है। प्रायः कुछ लोगों का विचार है कि गोस्वामी जी महाराज ने नारी की भरपेट निन्दा की है। हम रामचरित मानस के कुछ सन्दर्भों को आपकी सेवा में उद्धृत करके दिखाते हैं कि नारी का गोस्वामी जी महाराज की दृष्टि में कितना सम्मान है।

आगे उन प्रसंगों को उद्धृत करेंगे जिन पर लोग आपत्ति करते हैं। सर्वप्रथम गोस्वामी जी महाराज के (नारी) सम्मान को उन्हीं की विदुषी पत्नी रत्नावली से प्रारम्भ करते हैं। येन केन प्रकारेण गोस्वामी जी महाराज अपनी सुसराल आते हैं। वर्षा का समय है। रत्नावली तथा सभी परिवारीजन गाढ़ निन्द्रा में निमग्न हैं। श्री तुलसीदास जी अपनी पत्नी के वियोग को सह नहीं पा रहे हैं। अन्ततोगत्वा रत्नावली को पहचान कर चादर झटक कर कहा प्रिये रत्नावली। रत्नावली प्रियतम को पहचान कर आश्चर्य चकित होकर बोली आधी रात के घोर अन्धकार में आप यहाँ कैसे आ गये? जब सारी परिस्थितियों को श्री तुलसीदास जी से सुना और समझा तो चरणों में नतमस्तक होकर रत्नावली ने कहा प्रियतम इतना नारी मोह ठीक नहीं है। कोई पति-पत्नी को पत्नी के कारण प्यार नहीं करता अपने लिये करता है। प्रियवर जितना प्यार आप मुझे करते हैं इतना यदि ईश्वर के साथ करने लगें तो आप का संसार में यश हो जाय। कितनी उच्चकोटि की आध्यात्मिक दृष्टि है, रत्नावली की। मात्र इसी एक वाक्य ने तुलसी का मोह भंग कर दिया और कहा एक बार पुनः इसी वाक्य हो दुहरा दो, रत्नावली ने पुनः ईश्वर प्रेम का सन्देश दिया, फिर क्या था नारी के उपदेश से जो मात्र तुलसी थे अब संत तुलसीदास बन गये, और नतमस्तक होकर पत्नी को गुरु कहा, माँ कहा, और अन्तिम विदा ली। उनके शब्दों में पढ़ें नारी का सम्मान। सीता के विरह में श्री राम जी अत्यन्त विह्वल हैं।

चौ0 चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ।।
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोर करत हहिं निंदा।।
हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं।।
संग लाइ करिनी करि लेंही। मानउ मोहि सिखावन देंही।।
देखउ तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा।।
लछिमन देखउ काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह के जगलीका।।

एहि कें एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी।।

–(अरण्यकाण्ड)

चौ० बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए।।
घन घमण्ड अति गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।।
दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं।।
बरसहिं जलद भूमि निअराए। जथा नवहिं बुध विद्या पाये।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन सन्त सह जैसे।।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरें हुँ धन खल वौराई।।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी।।
दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।।
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें विवेका।।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। अस सुराज खल उद्यम गयऊ।।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।।

दोहा कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ विलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्भ नसाहिं।।

–(रामचरित मानस किष्किन्धा काण्ड)

पाठक गण उक्त प्रसंग के साथ ही, यह नीति शास्त्र का वर्णन करके अब मूल विषय का प्रतिपादन करते हैं।

बरषागत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता के पाई।।
एक बार कैसेहुँ सुधि पावौं। कालहु जीत निमिष में लावों।।
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावाराज कोष पुर नारी।।
कतहुँ रहउ जौ जीवित होई। तात जतन करि आनउँ सोई।।

–(रामचरित मानस किष्किन्धा काण्ड)

मान्यवर! श्री रामचन्द्र जी नारी सम्मान में अपने जीवन की बाजी लगाने को उद्यत हैं।

नारी सम्मान पर कथित आक्षेपों के उत्तर पढ़ें–

प्रसंगों का पूर्वापर विचार न करने के कारण अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यद्यपि कई चौपाइयाँ रामचरितमानस में ऐसी हैं जिन्हें पढ़कर आपको लगेगा कि नारी का घोर अपमान है। इस प्रकार की चौपाई उद्धृत करके प्रसंगानुसार विचार करते हैं–

ढोल गँवार सूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।

-(रामचरित मानस सुन्दर काण्ड)

इसका अर्थ करने से पूर्व हम प्रसंग पर विचार करते हैं। समुद्र के किनारे श्रीराम को सेना सहित तीन दिन पड़े हो गये।

दोहा बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।

चौ0 सन्धानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला।
सभय सिन्धु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ बहु अवगुन मेरे।।
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं। मर्यादा पुनि मेरी कीन्हीं।
ढोल गँवार सुद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।

-(रामचरित मानस सुन्दर काण्ड)

यद्यपि समुद्र जड़ है जड़ वस्तु में ज्ञान कहाँ से आया। प्रत्येक जड़ वस्तु का उपयोग चेतन सत्ता के द्वारा होता है। यह एक आलंकारिक वर्णन है। इस प्रकार के अनेकों वर्णन साहित्य में मिलते हैं। विचारशील जन विवेक पूर्वक इस पर विचार करेंगे।

समुद्र विनम्र प्रार्थना करता है भगवान् में जड़ हूँ, ज्ञान शून्य ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी की भाँति। आप मुझे क्षमा करें। ताड़ना का अर्थ प्रायः लोग पीटना-मारना लेते हैं किन्तु ताड़ना का अर्थ भय दिखा कर सही राह पर लाना है।

अन्य आक्षेपों का उत्तर-

श्री नारद जी विश्वमोहिनी के स्वयंवर में आकर उसका वरण करना चाहते हैं। नारद जी जैसे ऋषि को श्री विष्णु भगवान् इस घोर संकट से उबार कर यथास्थिति में लाते हैं। जब नारद जी बच निकलते हैं तो नारद जी के उक्त एक प्रश्न के उत्तर में भगवान् विष्णु जी उपदेश करते हैं-

दोहा अवगुन मूल शूल-प्रद प्रमदा सब दुख खान।
ताते कीन्ह निवारन नारद अस जिय जान।।

चौ0 सुन मुनि जन पुराण कहँ सन्ता। मोह विपिन कहु नारि बंसता।।
जप तप नियम जलाश्रय झारी। वन ग्रीसम सोखइ सब नारी।।

विज्ञ पाठकगण इतने ही से इस प्रसंग की वास्तविकता को समझ गये होंगे। ❁

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार करना राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

स्वास्थ्य चर्चा

वीर्यकीट उत्पन्न करने के लिए–

वट (बड़, बरगद) के दूध की 5–6 बूँद बताशे में रखकर प्रतिदिन प्रातः सेवन करें, ऊपर से धारोष्ण दूध पिएँ। दो मास पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहें। वीर्य में कीट संख्या बढ़ जाएगी।

नोट– बड़ का दूध प्रातः सूर्योदय से पूर्व अच्छा निकलता है। 2–3 पत्तों को तोड़ने से पर्याप्त दूध प्राप्त हो जाएगा।

वीर्यवर्धक–

1. दालचीनी 3 ग्राम रात्रि में सोते समय थोड़े गर्म–गर्म दूध के साथ दिया करें। एक सप्ताह के निरन्तर सेवन के वीर्य में अनुपम वृद्धि होगी।

2. इमली के बीज की गिरी कूट–पीसकर चूर्ण बना लें।

प्रतिदिन 3 ग्राम चूर्ण फांककर ऊपर से गर्म दूध ठण्डा करके पी लें। इसके सेवन से वीर्य गाढ़ा होगा, बल और शक्ति बढ़ेगी।

वीर्यस्तम्भक–

सत्त्व गिलोय और वंशलोचन असली, दोनों को समभाग लें। वंशलोचन को कूटकर दोनों को मिला लें।

प्रतिदिन 2 ग्राम दवा शहद के साथ सेवन करने से एक सप्ताह में वीर्य गाढ़ा हो जाता है और स्वतः स्खलित नहीं होता।

स्वप्नदोष–

1. सोते समय 4 ग्रेन कपूर मिश्री मिलाकर फांकने से कुछ ही दिन में स्वप्नदोष होना बन्द हो जाता है।

2. मुलहठी का चूर्ण 3 ग्राम को मधु में मिलाकर चाटने से भी स्वप्नदोष बन्द होता है।

3. प्रातःकाल शौच आदि से निवृत्त होकर सूर्योदय से पूर्व वटवृक्ष (बड़ के पेड़ के पत्ते तोड़–तोड़कर एक बताशे में 10 बूंद दूध भर लें और बताशे को खा जाएँ। घर आकर दूध पी लें। पहले ही दिन लाभ दिखाई देगा।

रात्रि में लघुशंका करके सोएँ। प्रतिदिन भोजन के दो घण्टे पश्चात् शीतलचीनी एवं मिश्री (दोनों समभाग) का चूर्ण 3 ग्राम फांककर ऊपर से एक गिलास पानी पी लें। फिर जब भी पेशाब जाएँ एक गिलास पानी पी लें। इससे मसाने की गर्मी शान्त होगी।

नोट– बड़ का दूध सूर्योदय से पूर्व ही अच्छा निकलता है।

4. बनारसी आँवले (उत्तम मोटावाला) का मुरब्बा एक नग प्रतिदिन पानी से अच्छी प्रकार धोकर चबा-चबाकर खाएँ। अपने गुणों में अद्‌भुत है। कैसा ही भयंकर स्वप्नदोष होता हो, कुछ दिन के सेवन से भाग जाता है।

आंवला रसायन है। वीर्य-विकारों को दूर करने के अतिरिक्त यह हृदय, मस्तिष्क और नेत्र-रोगों में भी अत्यन्त लाभदायक है।

5. छह ग्राम चिरौंजी को कूटकर आधा किलो गोदुग्ध में औटाएँ। जब दूध जलकर आधा रह जाए तब रोगी को सोते समय पिला दें। तीन दिन में रोग जड़ मूल से समाप्त हो जाएगा।

6. कपूर दो ग्राम, अफीम आधा ग्राम दोनों को मिलाकर रात को सोते समय खाने से स्वप्नदोष नहीं होता।

विशेष– मन को पवित्र रखें। निठल्ले न रहकर कुछ कार्य करते रहें। शीतल जल से प्रतिदिन स्नान करें। व्यायाम करें। ब्रह्मचर्य का पालन करें। शाम को केवल फल खाएँ या हल्का भोजन सोने से तीन घण्टा पूर्व लें। भूमि पर शयन करें। सत्संग करें। प्रसन्न रहें। 'मैं निरोग हो रहा हूँ'-ऐसी भावना करें। प्राणायाम करें।

–(शेष अगले अंक में)

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2019** तथा **2020 का वार्षिक शुल्क** बार-बार के पत्र लेखन तथा फोन द्वारा सूचना देने के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है। वे वर्ष **2021** के वार्षिक शुल्क के साथ अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** वेदमन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। शुल्क जमा न होने की स्थिति में पत्रिका बन्द कर दी जायेगी। आशा और विश्वास है कि पाठकगण अविलम्ब शुल्क भेजकर अपनी पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहेंगे। जो महानुभाव ऑन लाइन द्वारा शुल्क जमा करते हैं वे फोन द्वारा कार्यालय को सूचित अवश्य करें ताकि उनका शुल्क जमा किया जा सके। वे पाठकगण धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने समय से वर्ष 2020 का शुल्क जमा किया है। **–व्यवस्थापक**

चेतावनी

यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः। धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वञ्चते।।

जो मनुष्य परम दुर्लभ मानव-जन्म को पाकर भी कामपरायण हो दूसरों से द्वेष करता और धर्म की अवहेलना करता रहता है, वह महान् लाभ से बंचित रह जाता है। **–(महा० शान्ति० 297। 34)**

"महर्षि देव दयानन्द के जीवन की कुछ मुख्य–मुख्य घटनाएँ"

लेखकः–खुशहालचन्द्र आर्य, महात्मा गांधी रोड, कोलकाता

महर्षि देव दयानन्द के जीवन की वैसे तो सैकड़ों नहीं हजारों मुख्य मुख्य घटनाएँ हैं परन्तु हम यहाँ पर कुछ विशेष प्रमुख घटनाओं का ही वर्णन करते हैं जो इसी भांति हैं–

1. जन्म स्थान– महर्षि देव दयानन्द का जन्म मोरवी राज्य (गुजरात) में टंकारा गांव में फाल्गुन वदी दसवीं विक्रम संवत् 1881 तद्नुसार 12 फरवरी सन् 1825 ई0 में पिता के कर्षन जी तिवारी माता यशोदा देवी कई लोगों का कहना है कि माता का नाम 'अमृताबेन' था। जो भी हो, हो सकता है एक ही माताजी के दो नाम हों, इनके घर जन्म हुआ। स्वामी जी के बचपन का नाम मूलशंकर था। उनके पिता कर्षन जी तिवारी औदित्य ब्राह्मण थे। उनको बचपन में दयाल जी के नाम से भी पुकारा जाता था। उनके पिताजी शिव के अनन्य भक्त थे।

2. शिवरात्रि को हुआ ज्ञान– फाल्गुन वदी चतुर्दशी सम्वत् 1894 (22 फरवरी सन् 1838 ई0) को शिवरात्रि का दिन आ गया। बस्ती के सभी शैव अपने बच्चों के साथ शिव अराधना के लिए मन्दिर की ओर प्रस्थान करने लगे। मूलशंकर भी पिताजी के साथ मन्दिर में चला गया। पिताजी ने उसे पहले ही समझा दिया था कि जो भक्त पूरी रात जागरण करके शिवजी की आराधना करता है, उसे ही सुफल की प्राप्ति होती है। मूलशंकर ने निश्चय कर लिया था कि वह सारी रात जागकर शिव की विधिवत् आराधना करेगा, परन्तु उस समय उसके आश्चर्य की ठिकाना न रहा जब रात्रि का तीसरा पहर आरम्भ होते ही लगभग सभी अराधन मन्दिर के बाहर जाकर निद्रा की गोद में समाते चले गये। उसके पिताजी वहीं लुढ़क गये और खरटि भरने लगे। पर धुन का धनी मूलशंकर शीतल जल की सहायता से जागते रहे। और विधिवत् शिव आराधना में लगे रहे। सभी भक्त गहरी निद्रा में सो गये थे, अवसर पाते ही चूहे अपने–अपने बिलों से निकलकर शिव पिण्डी पर चढ़े और प्रसाद का भोग लगाने लगे। यह सब देखकर पत्थर पूजा से मूलशंकर का मोह भंग हो गया। उसे निश्चय हो गया कि यह वह शंकर नहीं है, जिसकी कथा उसे सुनाई गई है कि वह तो चेतन है, डमरू बजाता है, बैल पर चढ़कर यात्रा करता है, शत्रुओं के संहार के लिए त्रिशूल रखता है, परन्तु यह शिव तो चूहों से अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता, तो हमारी रक्षा क्या करेगा, ऐसा विचार आते ही उसने अपने पिताजी को जगा दिया और एक सीधा–सा प्रश्न किया "पिताजी यह कथा वाला शिव है या कोई दूसरा?"

पिता कर्षन जी तिवारी ने अपने पुत्र मूलशंकर को शिव के सम्बन्ध में बहुत समझाया परन्तु पुत्र का मन पिताजी के बातों से सन्तुष्ट नहीं हुआ और मूलशंकर को इस घटना से पत्थर पूजा यानि जड़ पूजा से विश्वास उठ गया और वह मन्दिर से उठकर घर चला गया और पिताजी की बिना आज्ञा लिए माताजी से भोजन लेकर भोजन कर लिया और सो गया।

3. छोटी बहन व चाचाजी की मृत्यु और गृह त्याग– शिव रात्रि के दृश्य से मूलशंकर के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और सच्चे शिव की खोज में ध्यान रहने लगा इसी बीच जब मूलशंकर सोलह वर्ष के हुए तो उसकी छोटी बहन की हैजे की बीमीरी से मृत्यु हो गई, तब मूलशंकर बिल्कुल नहीं रोया और एक तरफ खड़ा होकर विचार करने लगा कि यह मृत्यु क्या है? क्या मुझे भी एक दिन इस मृत्यु में जाना पड़ेगा। तीन साल बाद जब मूलशंकर की आयु उन्नीस वर्ष की हो गई थी, तब उसका चाचा जो उसको अति प्यार करता था, उसकी मृत्यु हो गई, तब मूलशंकर बहुत अधिक रोया और उसकी वैराग्य की भावना और अधिक बढ़ गई। उसने अपनी भावनाओं को मित्रों को बतला दी और यह बात उनके माता–पिता के पास पहुंच गई। उन्होंने मूलशंकर का विवाह करने का विचार बना लिया। मूलशंकर विवाह किसी भी हालत में करना नहीं चाहते थे। इसलिए उसने गृह त्याग का मन बना लिया। उसने सन् 1846 ई0 में अपनी इक्कीस वर्ष की आयु में गृह त्याग करके जंगल की ओर चल पड़े। कुछ दूर चलने पर उसको साधु वेष में कुछ ठग मिले जिन्होंने मूलशंकर के गहने अंगूठी तथा कीमती वस्त्र उतरवा लिये। चलते–चलते मूलशंकर सायला (अहमदाबाद) और राजकोट के बीच में पहुंचे वहाँ उसको एक ब्रह्मचारी मिला जिसने उसको सन् 1846 ई0 में ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी और उसका नाम शुद्ध चैतन्य रख दिया।

अब ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य कुछ दिन सायला ठहरकर फिर वे आगे बढ़े तो वह अहमदाबाद के समीप कोटकांगड़ा पहुंचे, वहाँ वैरागियों को डेरा लगा हुआ था। वहाँ शुद्ध चैतन्य को सिद्धपुर (गुजरात) मेला की जानकारी मिली, जहाँ साधु–सन्त, योग–महात्मा एकत्रित होते हैं। वहाँ के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में उनको अपने कुल का परिचित एक वैरागी साधु मिला। उसके पूछने पर शुद्ध चैतन्य ने भावावेश अब तक की सम्पूर्ण घटना उसे कह सुनायी और सिद्धपुर मेले में जाने का अपना विचार भी बतला दिया। उस परिचित वैरागी ने अपने घर पर पहुंच कर कर्षन जी तिवारी को शुद्ध चैतन्य का पूरा विवरण साथ ही सिद्धपुर मेले में जाने का पूरा विवरण समाचार–पत्र द्वारा भेज दिया। इधर शुद्ध चैतन्य ने सिद्धपुर मेले में नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में अपना आसन जमाया। उधर पिताजी पत्र मिलते ही कुछ सिपाहियों को साथ लेकर सिद्धपुर मेले में पहुंच गये और नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में पहुंचकर अपने बेटे को वैरागी वेश में देखकर आपे से बाहर हो गये और बोले "कुल कलंकी" क्या तू तेरी माता की हत्या करना चाहता है।" पिता को देखकर शुद्ध चैतन्य खड़ा हुआ और उनके पैर छूते हुए बोले "किसी के बहकावे में आकर मैंने घर त्याग दिया था, अब मैं आपके साथ चलूंगी। परन्तु इससे पिताजी का क्रोध शान्त न हुआ। उन्होंने उसके गेरूए बस्त्र फाड़ दिये और तुम्बा तोड़ दिया। उसे श्वेत वस्त्र पहनाये और सिपाहियों को पहरे पर बिठा दिया। दो दिन तो ऐसे ही निकल गये। तीसरी रात का तीसरा प्रहर आरम्भ हुआ तो प्रहरी ऊँघने लगे। धीरे–धीरे प्रगाढ़ निद्रा में पहुंच गये, तब शुद्ध चैतन्य शौच जाने का बहाना करके पानी से भरा लोटा हाथ में लिया और दबे पांव वहाँ से खिसक गये। कुछ दूर चलने के बाद उसे एक बगीचा में मन्दिर दिखाई दिया। मन्दिर के साथ ही एक विशाल वटवृक्ष था। मन्दिर की छत पर

वटवृक्ष की ओट में वह बैठ गया। कुछ देर बाद कुछ सिपाही मन्दिर में आये और शुद्ध चैतन्य को बिना देखे ही वहाँ से चले गये। प्रातः शुद्ध चैतन्य पेड़ के सहारे नीचे आये और दो कोस दूर एक ग्राम में रात व्यतीत की। इस प्रकार पिताजी से अन्तिम भेंट सिद्धपुर में करके फिर सदा के लिए बिदा हो गये।

4. संन्यास दीक्षा– मन्दिर से चलकर शुद्ध चैतन्य अहमदाबाद होते हुए बड़ोदरा में आकर चैतन्य मठ में ठहरे। वहाँ उनकी ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी जो वेदान्त के अच्छे विद्वान् थे, उनसे भेंट हुई। उनसे वेदान्त पर खुलकर चर्चा हुई और उनसे कुछ वेदान्त की जानकारी भी हुई। शुद्ध चैतन्य को भोजन बनाने में काफी समय लग जाता था। जिससे विद्याध्ययन में बाधा पड़ती थी। यदि संन्यास की दीक्षा ले ली जाए तो इस झंझट से बचा जा सकता है। इसलिए उसने एक ब्रह्मचारी वैदिक विद्वान् स्वामी पूर्णानन्द जो चाणोद (गुजरात) के पास एक जंगल में आए हुऐ थे। उनसे संन्यास की दीक्षा लने का विचार किया और जल्दी ही उनके पास पहुंच कर संन्यास की दीक्षा देने की प्रार्थना की। पहले तो वह संन्यास की दीक्षा देने से इंकार कर दिया। फिर कुछ समय बाद काफी अनुनय–विनय करने से दीक्षा देने की अनुमति दे दी और शुद्ध चैतन्य को स्वामी सरस्वती भोजनादि बनाने के झंझट से मुक्त हो विद्याध्ययन में लग गये। स्वामी पूर्णानन्द, पूज्य स्वामी ओमानन्द के शिष्य थे और स्वामी विरजानन्द, स्वामी पूर्णानन्द के शिष्य थे। स्वामी पूर्णानन्द जो स्वामी दयानन्द के गुरू थे। स्वामी पूर्णानन्द ने ही स्वामी दयानन्द के अपने शिष्य स्वामी विरजानन्द के पास मथुरा जाने की प्रेरणा दी थी।

5. सन् 1857 ई0 के आस–पास– गुरु दीक्षा लेने के बाद स्वामी जी चाणोद से हरिद्वार के कुम्भ के मेले में शामिल होने के लिए हरिद्वार आ गये। यहाँ अनेकानेक साधु–सन्तों से मिलकर उनसे योग तथा अन्य शास्त्रों के सम्बन्ध में काफी चर्चा की और वहाँ पर ''पाखण्ड–खण्डनी'' पताका फहराकर सबको अचम्भित कर दिया। इसी समय सन् 1857 ई0 के स्वतन्त्रता आन्दोलन की तैयारी चल रही थी। इसके लिए प्रथम प्रमुख सभा सुन् 1855 ई0 में हरिद्वार में हुई जिसमें भारत के अन्तिम सम्राट बहादुर शाह जफर के पुत्र फिरोज शाह अजीमुल्ला खाँ, रंगूबापू आदि विशिष्ठ जन सम्मिलित हुऐ। इसमें डेढ़ हजार के लगभग लोगों ने भाग लिया दूसरी सभा गढ़गंगा के मेले के अवसर पर गढ़गंगा के किनारे सम्पन्न हुई। इसमें लगभग अढ़ाई हजार की उपस्थिति थी। तीसरी महत्वपूर्ण सभा अक्टूबर के अन्त में सन् 1855 ई0 में फिर हरिद्वार में हुई। इस सभा में 565 साधुओं व 195 मुसलमान सूफी सन्तों ने भाग लिया। इस सभा की योजना स्वामी ओमानन्द जो स्वामी पूर्णानन्द का गुरू था और स्वामी पूर्णानन्द ने मिलकर तैयारी की। यह योजना स्वतंत्रता संग्राम किस प्रकार किया जावे उस सम्बन्धी ही थी। जो बाद में सन् 1857 ई0 के स्वतन्त्रता संग्राम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस योजना की पूरी व्यवस्था स्वामी विरजानन्द जी ने की थी। स्वामी दयानन्द इस योजना में गुप्त रूप से कार्य कर रहे थे। इसी समय स्वामी पूर्णानन्द ने स्वामी दयानन्द को स्वामी विरजानन्द के पास जाने की प्रेरणा दी थी कारण स्वामी पूर्णानन्द स्वामी विरजानन्द का भी गुरू था और उसकी विद्वता के बारे में सब जानते थे। मझे यहाँ यह बतलाना भी

जरूरी है कि जब भी देश की स्थिती बिगड़ी है, तब-तब साधु-सन्तों ने ही देश की स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया है। राम के समय जब राक्षसों का प्रभाव बढ़ गया था। तब स्वामी विश्वामित्र तथा वशिष्ठ आदि ने मिलकर राक्षसों के राजा रावण को मार कर राक्षसों के प्रभाव को समाप्त करने की योजना बनाई थी। इस योजना के अधीन राम को इस कार्य के लिए योग्य समझकर कैकई व दासी मन्थरा को तैयार किया गया था। जिससे राजा दशरथ अपने प्रिय पुत्र राम को स्वामी विश्वामित्र के साथ वन में भेजने के लिए तैयार हो जावे उसी प्रकार अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के लिए स्वामी ओमानन्द, स्वामी पूर्णानन्द व स्वामी विरजानन्द ने सन् 1857 ई0 के स्वतन्त्रता संग्राम वाली योजना बनाई थी। सन् 1857 ई0 के समय स्वामी ओमानन्द जो स्वामी पूर्णानन्द का गुरू था, उसकी आयु 160 वर्ष की थी। स्वामी पूर्णानन्द की आयु 110 वर्ष की थी, जो स्वामी विरजानन्द का गुरू था और स्वामी जी को भी संन्यास की दीक्षा थी और स्वामी विरजानन्द की आयु 79 वर्ष की थी जो बाद में स्वामी दयानन्द की आयु 33 वर्ष की थी का गुरू बना। इस प्रकार इन सब साधु-सन्तों की सन् 1857 ई0 के स्वतन्त्रता संग्राम की योजना की थी। यहाँ यह बात बतलानी भी बहुत जरूरी है कि 1857 के स्वतन्त्रता आन्दोलन को अंग्रेजों ने "सैनिक विद्रोह" का नाम दिया था। परन्तु बाद में वीर सावरकर ने इसे स्वतन्त्रता संग्राम घोषित किया और इसी नाम से एक पुस्तक भी लिखी इसलिए यह कार्य वीर सावरकर का बहुत ही सराहनीय कार्य था जिसके लिए लेखक वीर सावरकर की प्रशंसा करता है।

6. <u>सद्गुरु विरजानन्द की कुटिया पर सन् 1857 ई0 के स्वतन्त्रता</u>– संग्राम में भाग लेने के बाद स्वामी जी जो सच्चे शिव को पाने के लिए अनेक स्थानों पर गये। जिनमें पर्वतों की ऊँची-ऊँची चोटियों पर गये। एक ऐसी बस्ती में गये जिसमें दुर्गा के भक्त रहते थे। उन्होंने स्वामी जी का हट्टा-कट्टा, लम्बा-तगड़ा आकर्षक शरीर देखकर स्वामी जी को दुर्गा जी को भेंट चढ़ाने के लिए उद्यत हो गये। परन्तु स्वामी जी उनकी चाल को समझ गये और उनकी तलवार को छीनकर तलवार को घुमाते हुए मन्दिर की दीवार फांद कर अन्धकार में विलीन हो गये। अपनी इस यात्रा में स्वामी जी ओखीमठ भी गये और वहाँ के महन्त से शास्त्र चर्चा भी हुई। मठ के महन्त स्वामी जी विद्वता तथा आकर्षक व्यक्तित्व देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए। और उसने स्वामी जी को अपना शिष्य बन जाने को कहा, और मठ की लाखों की समपत्ति का स्वामी बन जाने को कहा, परन्तु उस महान निर्लोभी स्वामी जी ने उस प्रलोभन को ठुकरा दिया और आगे बढ़ गये। स्वामी जी बद्रीनारायण होते हुऐ अलकनन्दा नदी के तट पर जा पहुंचे। नदी के उद्गम स्थान पर पहुंचने के लिए स्वामी जी नदी में प्रवेश कर गये। मौसम इतना शीतल था कि नदी का पानी इतना शीतल था जिससे पानी की ऊपर सतह गई थी। जिससे स्वामी जी को नदी पार करने में अति कष्ट ही नहीं हुआ बल्कि किसी प्रकार जान बचाकर नदी को पार कर लिया। फिर वहां से वापिस बद्रीनारायण लौट आये। फिर यहाँ से काशीपुर, द्रोणसागर मुरादाबाद होते हुऐ गढ़मुक्तेश्वर के रास्ते गंगा के घाट पर आकर विश्राम किया।

–(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

मानव–जीवन का आदर्शः रामायण की कथा और पात्र

लेखकः डॉ0 भवानीलाल भारतीय

जैसाकि हम आरम्भ में कह चुके हैं, राम, सीता, दशरथ आदि शब्द तो वेदों में यत्र–तत्र आये हैं किन्तु वे प्रचलित राम–कथा के पात्रों का निदर्शन नहीं करते। वेदों में प्रयुक्त 'सीता' कृषि कर्म का वर्णन करने वाले मंत्रों में हल की फाल के लिये आया है। अथर्ववेद में आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली जिस देवपुरी अयोध्या का वर्णन है वह इक्ष्वाकु वंश के राजाओं की राजधानी नहीं, अपितु मानव शरीर का ही रूपकात्मक वर्णन है। तथापि वेदों में आये राम कथा के निदर्शक इन शब्दों का लाभ लेकर पं0 नीलकण्ठ ने 'मन्त्र रामायण' की रचना की और ऋग्वेद के मंत्रों से ही रामकथा निकाल ली। उसका यह प्रयास दूर की कौड़ी लाने के तुल्य ही है क्योंकि यदि मंत्रों में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ स्वेच्छापूर्वक ही किये जायें, तब तो 'ईशावास्यम् में ईसा मसीह दिखाई देंगे और 'शतमदीनास्याम्' में अरब के मदीना नगर के दर्शन होंगे। नीलकण्ठ ने मंत्र रामायण की तरह 'मंत्र भागवत' की भी रचना की है क्योंकि वेदों में कृष्ण–कथा के सूचक शब्द भी यत्र तत्र आये हैं किन्तु वे इस महाभार–कालीन कथा के प्रतीक कथमपि नहीं है।

रामायण की कथा वैदिक धर्मावलम्बी आर्यों में तो प्रचलित रही ही, उसने वैदिकेतर लोगों को भी प्रभावित किया। अठारह पुराणों की भांति जैन विद्वानों ने भी पुराण लिखे और इनमें रामकथा भी लिखी गई। विमल सूरि का लिखा प्राकृत महाकाव्य 'पउ म चरिय' का कथानक वाल्मीकीय रामायण का अनुसरण करता है जबकि गुणभद्र लिखित 'उत्तर–पुराण' में वर्णित राम–कथा परम्परा से भिन्न है। सुप्रसिद्ध वैयाकरण तथा संस्कृतज्ञ हेमचन्द्र सूरि ने 'जैन रामायण' लिखी। जैन उत्तर–पुराण ने तो राम–कथा को इतना विकृत कर दिया कि वहां सीता को रावण की पुत्री कहा गया जो मन्दोदरी के गर्भ से पैदा हुई थी। जैन परम्परा में राम–कथा को जो विकृति प्राप्त हुई उसके दुष्परिणाम भी हुए। एक जैनाचार्य श्री तुलसी ने 'अग्नि–परीक्षा' नामक काव्य सीता की अग्निपरीक्षा को आधार बनाकर लिखा।

रामायण की लोकप्रियता का पता इस तथ्य से भी पता लगता है कि उसने भारत की भौगोलिक सीमाओं को पार कर निकटवर्ती तथा सुदूर पूर्व के समुद्रपारीय देशों की जनसंस्कृति तथा जीवन को प्रभावित किया। चीन और तिब्बत में रामकथा का प्रवेश बौद्धग्रन्थों के माध्यम से हुआ। इनमें 'दशरथजातक' प्रमुख है। पूर्वी तुर्किस्तान इण्डोचाइना, स्याम (थाईलैण्ड) तथा वर्मा में भी रामायण की कथा प्रचलित रही। इण्डोनेशिया में तो रामायण और महाभारत की कथाओं ने अत्यन्त लोकप्रियाता प्राप्त कर ली है। यद्यपि धर्म की दृष्टि से इण्डोनेशिया मुस्लिम देश है किन्तु वहां के जनमानस और लोक संस्कृति में रामायण की कथा और उसके पात्र इस प्रकार प्रविष्ट हो गये हैं कि कोई भी शक्ति उन्हें इनसे पृथक् नहीं कर सकती। इण्डोनेशिया के जावा द्वीप में पत्थरों पर रामायण की कथा को चित्र रूप में अंकित किया

गया है। वर्षों पूर्व जब आर्यप्रचारक पं जैमिनि मेहता ने उस देश की यात्रा की थी तो उन्हें इस पाषाण चित्र लिपि रामायण का पता चला। मेहता जी ने उन पाषाण चित्रों के फोटो लिये और स्वटिप्पणी सहित उन्हें पुस्तककार प्रकाशित किया। उन्हें एक सत्तर श्लोकी गीता का भी पता चला, जिसमें श्लोकों की संख्या मात्र 70 है।

राम-कथा को लेकर भारत की विभिन्न भाषाओं में जो काव्य-रचना हुई है उसका समय विवेचन करना भी स्थान संकोच से अशक्य है। यदि हम संस्कृत को ही लें तो उसमें रामकथा को उपजीव्य बना कर लिखे गये गद्य, पद्य, चम्पू तथा नाटक आदि दृश्य काव्यों की भरमार है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश लिख कर राम के पावन चरित्र का अंकन किया तथा रघुवंशी राजाओं के आदर्श जीवनक्रम को निम्न श्लोक में व्यक्त किया-

शैशवेऽभ्यस्त-विद्यानां यौवने विषयेषिणाम्।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनूत्यजाम्।।

रघुवंश में जन्म लेने वाले ये राजा बाल्यकाल में विद्याभ्यास करते हैं, तत्पश्चात् युवावस्था में राज्य संचालनादि सांसारिक विषयों में लिप्त रहते हैं। किन्तु वृद्धावस्था के आगमन के साथ ही मुनिवृत्ति धारण कर तृतीय वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं। ये अपने शरीर को भी योग की क्रियाओं के द्वारा ही त्यागते हैं।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रतापी राजाओं का वर्णन करने में अपनी अल्पमति की तुलना उस व्यक्ति से की है जो एक छोटी सी नाव के द्वारा महासागर को पार करने की इच्छा करता है। महाकवि भट्टि का रावणदव (भट्टि काव्य के नाम से (विख्यात) संस्कृत के अलंकार-शास्त्र तथा व्याकरण का बोध कराने की दृष्टि से लिखा गया है। कुमारदास का 'जानकीहरण' एक अन्य प्रसिद्ध काव्य है जिसके बारे में निम्न चामत्कारिक उक्ति प्रसिद्ध है-

जानकी हरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणस्य यदि श्रमो।।

यदि रघुवंश जैसे काव्य की विद्यमानता में भी जानकीहरण जैसे काव्य का लिखा जाना सम्भव हो सका तो यह कवि कुमारदास के द्वारा ही शक्य था, उसी प्रकार जिस प्रकार रघुवंशी राम के होने पर भी रावण ने सीता का हरण किया। प्रवरसेन के 'सेतुबंध' का उल्लेख भी आवश्यक है। यह काव्य प्राकृत भाषा का है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने वाल्मीकीय रामायण का एक संक्षिप्त संस्करण रामायण मंजरी के नाम से संकलित किया जो अत्यन्त विवेक तथा सावधानी से हुआ है। क्षेमेन्द्र की भारत मंजरी भी चर्चित पुस्तक है।

श्रव्य काव्य की ही भांति दृश्य-काव्यकारों ने भी रामायण की कथा का भूरिशः उपयोग नाटक-रचना में किया। सर्वप्रथम हम प्रसिद्ध नाटककार भवभूति की चर्चा करें। इनके दो नाटक 'महावीर

चरित' और 'उत्तररामचरित' रामकथा का आधार लेकर चलते हैं। महावीरचरित में यदि वीररस की प्रधानता है तो उत्तररामचरित में करुणरस की धारा निर्बाध गति से बढ़ी है।

लोकाराधन में तत्पर राम की यह उदात्त झांकी दर्शनीय है–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।

लोक की आराधना के लिये राम स्नेह, दया, सुख, यहां तक कि प्रिय पत्नी जानकी का भी त्याग करने के लिये उद्यत हैं। ऐसा करने में उन्हें कुछ भी दुःख नहीं होगा। 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' की उक्ति सार्थक है क्योंकि कवि ने इस नाटक में करुण रस की ही प्रमुखता दी और कहा है–

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्।

राम का कुसुम से भी कोमल और वज्राधिक कठोर चरित्र भी इसी नाटक में चित्रित किया गया है। अतः यह उक्ति प्रसिद्ध हुई–'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।' रामचरित को लेकर लिखे गये अन्य संस्कृत नाटकों में मुरारि मिश्र का अनर्थ राघव, राजशेखर का बाल रामायण, जयदेव का प्रसन्न राघव तथा दामोदर मिश्र का हनुमन्नाटक आदि उल्लेखनीय है।

संस्कृत के इतर भारतीय भाषाओं में रामकथा चित्रित हुई। बंगाल में कृत्तिवास की रामायण ने ख्याति अर्जित की तो माईकेल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनादबध' लिखकर राक्षस कुल को गौरव प्रदान किया। दक्षिण में 'कम्बरामायण' का प्रचार रहा। गोस्वामी तुलसीदास ने राम–कथा को विविध काव्य रूपों तथा छन्दोविधान में प्रस्तुत किया फलतः रामचरितमानस के अतिरिक्त 'कवितावली', 'गीतावली' तथा 'जानकीमंगल' जैसे काव्य उनके द्वारा लिखे गये। उन्होंने अपने मानस को 'नाना पुराणानिगमागम सम्मत' बताया तथा प्रत्येक काण्ड के आरम्भ में कतिपय सुन्दर संस्कृत छन्दों की रचना कर अपने संस्कृत ज्ञान तथा देववाणी में काव्य–रचना की क्षमता का परिचय दिया। कालान्तर में रामकथा को आधार बनाकर प्रभूत साहित्य लिखा। चतुरसेन शास्त्री ने 'वयं रक्षामः' शीर्षक उपन्यास में रावण की राक्षसी संस्कृति के उत्कर्ष की स्थापना की तो नरेन्द्र कोहली ने उपन्यासों की एक शृंखला ही रामकथा का आधार लेकर लिख दी।

द्विवेदी काल के कवि पं० रामचरित उपाध्याय ने आर्यसमाज के आदर्शों से प्रेरणा पाकर खड़ी बोली में रामचरित चिन्तामणि महाकाव्य लिखा, जिसमें रामकथा को अलौकिकता की भूमि से उतारकर स्वाभाविकता के धरातल पर प्रतिष्ठित किया। साथ ही रामायण के पात्रों की अवतारवादी धारणा को अस्वीकार कर उन्हें विशुद्ध आदर्श मानवों के रूप में परिकल्पित किया। मैथिलीशरण गुप्त का साकेत भी रामकथा को मानवी आदर्शों का प्रतीक मानकर लिखा गया। उनके राम लोक में आर्य आदर्शों की स्थापना के लिये आये हैं। तथापि राम के लोकोत्त्सा चरित का आख्यान करने से पूर्व वे यह कहना नहीं भूलते कि–

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।।

❈

शिक्षा एवं गुरु शब्दों की निरुक्ति

लेखकः जगन्नाथ वेदालंकार

'शिक्षा' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है-'शिक्ष विद्योपादाने' धातु से 'अ' प्रत्यय करके स्त्रीलिंग के लिये 'टाप्' प्रत्यय लगाने से 'शिक्षा' शब्द निष्पन्न होता है। इस प्रकार इसका अर्थ होता है विद्या का उपादान या ग्रहण। 'शिक्षा' मनुष्य को जीवन के नानाविध क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिये सुयोग्य और सक्षम बनाती है।

'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की जा सकती है।

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य हारकः।
उकारो विष्णुरव्यक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः॥

–(तन्त्रसार)

अर्थात् 'ग' अक्षर सिद्धिदायक कहा गया है और 'र' पाप का हरण करने वाला है। 'उ' अव्यक्त विष्णु है। इस प्रकार उन तीन अक्षरों से बना यह शब्द परमगुरु का वाचक है। 'गृ' शब्दे। **गृणाति उपदिशति धर्मं ज्ञानं भक्तिं च इति। गृणाति उपदिशति तत्त्वं वेदादिशास्त्राणि आत्मज्ञानसाधनानि वा इति।'** अर्थात् धर्म, ज्ञान और भक्ति का उपदेश करने के कारण वह गुरु कहलाता है। तत्त्व का, वेदादि शास्त्रों का और आत्मज्ञान के साधनों का उपदेश करने के कारण उसे गुरु कहते हैं। **'गीर्यते स्तूयते देवगन्धर्वमनुष्यादिभिः। गीर्यते स्तूयते महत्त्वाद् इति वा।'** देवों, गन्धर्वों और मनुष्य आदि से स्तुति किये जाने के कारण वह गुरु कहलाता है। महिमा और महात्म्य के कारण उसकी स्तुति की जाती है, इसीलिये उसे गुरु कहते हैं। **'गृ' सेचने। गरति सिंचति ज्ञानवारिणा शिष्यहृदयक्षेत्रम्।'** वह ज्ञान-वारि से शिष्य के हृदय-क्षेत्र को सींचता है। इसलिये गुरु शब्द से कहा जाता है। **'गृ' विज्ञाने। गारयते बोधयति वेदशास्त्रादीनि आत्मतत्त्वादिकं वा इति।'** वह वेदादि शास्त्रों का तथा आत्मतत्त्व आदि का ज्ञान कराता है, इसीलिये गुरु शब्द से वाच्य है। **'गृ निगरणे। गिरति गिलति अज्ञानम् इति।'** वह शिष्य के अज्ञान को निगल जाता है, इसलिये गुरु नाम से अभिहित होता है। **'गुरी उद्यमने। गुरते सत्पथे प्रवर्तयति शिष्यम् इति।'** शिष्य को सत्पथ पर प्रवृत्त एवं परिचालित करता है, अतः वह गुरु कहा जाता है।

गुशब्दस्त्वन्धकारे स्याद् रुशब्दस्तन्निरोधके।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते॥

–(गुरुगीता 19)

'गु' शब्द का अर्थ है 'अन्धकार' और 'रु' शब्द का अर्थ है उसका निरोध या विनाश करनेवाला। इस प्रकार अन्धकार का निरोधक होने से वह 'गुरु' पद से वाच्य है।

सच्चे गुरु के लक्षण

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं
सुगतिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति।
अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो
भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित्।।

'सच्चा गुरु हमारे मिथ्या बोध को नष्ट कर देता है और हमें शास्त्रों के सच्चे अर्थ का बोध करा देता है, सुगति और कुगति के मार्गों तथा पुण्य और पाप का भेद प्रकट कर देता है, कर्तव्य और अकर्तव्य का भेद समझा देता है। उसके बिना और कोई भी हमें संसार-सागर से पार नहीं कर सकता।'

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते।
प्रवर्तयत्यन्यजनं च निःस्पृहः।
स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः
स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः परम्।।

'यदि व्यक्ति अपना हित चाहता है तो उसे ऐसे गुरु का वरण करना चाहिये कि जो स्वयं पापरहित मार्ग पर चलता है और निष्काम भाव से दूसरों को भी उसी पथ पर चलाता है, स्वयं तर चुका है और दूसरों को तारने में समर्थ है।'

अन्तःस्थसच्चिदानन्दसाक्षात्कारं सुसाधयेत्।
योऽसावेव गुरुः प्रोक्तः परो नामधरः स्मृतः।।

'सच्चा गुरु वही है जो हमें हमारे अन्दर स्थित सच्चिदानन्द का साक्षात्कार सम्यक्तया करा दे। अन्य सब तो नामधारी गुरु ही है।'

दुर्लभः सद्गुरुर्देवः शिष्यसंतापहारकः।

'शिष्य के संताप को हरनेवाला सद्गुरुदेव अत्यन्त दुर्लभ है।'

मन्त्रदाता गुरुः प्रोक्तो मन्त्रस्तु परमो गुरुः।

'मन्त्रदाता को ही गुरु कहा गया है। वस्तुतः मन्त्र ही परम गुरु है।'

गुरु की शरण लेना अनिवार्य है

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्।।

-(श्रीमदभागत 11। 3। 21)

'जो परमोच्च कल्याण का मार्ग जानना चाहता हो उसे गुरुदेव की शरण लेनी ही चाहिये।

गुरुदेव ऐसे हों जो शब्द-ब्रह्म में-वेदादि शास्त्रों में निष्णात हों तथा नित्य-निरन्तर परब्रह्म में प्रतिष्ठित रहते हों और जिनका चित्त पूर्णतया शान्त हो चुका हो।'

गुरु ही ध्यान, पूजा, मन्त्र और मोक्ष का मूल है

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।

'ध्यान का मूल है गुरु की मूर्ति, पूजा का मूल है गुरु का चरण, मन्त्र का मूल है गुरु का वाक्य और मोक्ष का मूल है गुरु की कृपा।'

ब्रह्मज्ञानी गुरु यथाविधि समीप आये हुए दर्प आदि दोषों से मुक्त शान्तियुक्त शिष्य को ब्रह्मविद्या का तत्व समझाये, जिससे वह सत्य को और वास्तविक अक्षर पुरुष को जान सके।

द्वे विद्ये वेदतव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति, परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा, यया तदक्षर-मधिगम्यते। -(मुण्डकोपनिषद् 1। 1। 4-5)

'वह ब्रह्मज्ञाता उसे बतायेगा कि दो विद्याएँ जानने योग्य हैं। एक परा विद्या और दूसरी अपरा विद्या। उनमें अपरा विद्या है-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, धर्मविधि, व्याकरण, वैदिक-शब्द-विवरण, छन्दःशास्त्र और ज्योतिष। परा विद्या वह है, जिससे वह अक्षर ब्रह्म जाना जाता है।' ❁

दृढ़निश्चयी बालक गंगाराम

लाला दौलतराम जी अमृतसर में कोर्ट-इन्सपेक्टर थे। इनके शेखपुरा जिले के एक गुरुद्वारे में जो पुत्र हुआ, कौन जानता था कि वही बालक आगे चलकर इतनी ख्याति प्राप्त करेगा। बालक का नाम गंगाराम था। बचपन से ही वह अपनी धुन का पक्का था। जब गंगाराम इन्ट्रेन्स पास कर चुके, तब नौकरी की खोज में लाहौर आये। लाहौर में उनके कुल के पुरोहित एक इंजीनियर के दफ्तर में नौकर थे। गंगाराम जब उनसे मिलने गये, तब वे दफ्तर में नहीं थे, अतः एक कुर्सी पर बैठ गये। यह कुर्सी दफ्तर के अफसर इंजीनियर साहब की थी। इंजीनियर साहब ने आते ही गंगाराम को डाँटकर अपनी कुर्सी से उठा दिया। थोड़ी देर में वे पुरोहित जी आये और गंगाराम से पूछने लगे-'अब तुम्हारा क्या करने का विचार है?'

गंगाराम ने कहा-'विचार तो कुछ और था, पर अब बदल गया है। अब तो मैं इंजीनियर बनूँगा और जिस कुर्सी पर से उठाया गया हूँ, उस पर बैठकर रहूँगा।'

उस समय लोगों ने हँसकर बात उड़ा दी, किन्तु गंगाराम वहाँ से लौट आये और रुड़की के

-(शेष पृष्ठ संख्या 28 पर)

सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर पतन

लेखकः पं० भवानीलाल भारतीय

आज हमारे देश में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की सर्वत्र धूम है। किसी शिक्षण-संस्था को देखिये, किसी राष्ट्रिय पर्व में सम्मिलित होइये या किसी भी विदेशी अतिथि के स्वागत-समारोह में जाइये-आपको सर्वत्र पायलों की झनकार और नुपुरों की मधुर रुनझुन सुनायी देगी। आज प्राइमरी स्कूलों के नन्हें-मुन्ने बालकों-बालिकाओं से लेकर विश्व विद्यालयों के विकसित मस्तिष्कवाले युवक एवं युवतियाँ भी इन तथाकथित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मग्न दिखायी दे रही है। तब सहसा प्रश्न होता है कि क्या हमारे देश की संस्कृति केवल नृत्य, गीत, रागरस तक ही सीमित रह गयी है अथवा उसके उपादान और भी अधिक गम्भीर है?

आज हमने सांस्कृतिक कार्यक्रमों का क्या अर्थ समझा है? क्या समय-समय पर आयोजित होनेवाले नृत्य-गीत के कार्यक्रमों को ही हम सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत लेते हैं? संस्कृति के उदात्त तत्त्वों को केवल संगीत और अभिनय तक ही सीमित कर देना कहाँ तक न्याय है? संस्कृति तो किसी राष्ट्र ने ज्ञान-विज्ञान-नीति-धर्म-कला और चिन्तन के क्षेत्र में जो कुछ उपलब्ध किया है, उसकी समष्टि ही हमारी संस्कृति है। फिर यह समझ में नहीं आता कि हम आज केवल संगीत और अभिनय को ही संस्कृति क्यों समझ बैठे हैं?

हम यहाँ संस्कृति की कोई परिभाषा देने का प्रयत्न नहीं करेंगे, परन्तु इतना तो निश्चित-रुप से कह सकते हैं कि आज यहाँ तथा विदेशों में संस्कृति के नाम पर जो प्रदर्शन हो रहे हैं, संस्कृति के पवित्र नाम-रूप के व्याज से जो कुछ ताण्डव हो रहा है, वह शोचनीय है। वह संस्कृति तो है ही नहीं, और चाहे कुछ हो। सरलता, सभ्यता, अध्यात्मनिष्ठा, प्राणिमात्र के प्रति आत्मीयता तथा त्याग, सेवा, अहिंसा, सत्य और विश्वबन्धुत्व की भावना ही तो भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व है, जिनके कारण संसार में हमारे राष्ट्र का सम्मान है, परन्तु आज हम क्या देख रहे हैं? हमारे देश के विद्यालयों के अधिकांश छात्रों का पर्याप्त समय इन कार्यक्रमों की तैयारियों में ही नष्ट होता है। आज 15 अगस्त है तो कल 26 जनवरी है। आज युवक-युवतियों का समारोह है तो कल कुछ और है। स्कूल और कालेजों का कोई उत्सव तब तक सफल नहीं समझा जाता, जब तक एक मधुर और कर्णप्रिय सांस्कृतिक आयोजन उसके साथ न हो। इन उत्सवों पर शिक्षा के उच्च अधिकारियों और मन्त्रियों का भी शुभागमन होता है। छात्रों की शिक्षा और उनके चरित्र के विषय में चाहे उन्हें कुछ भी अवगत न कराया जाय, परन्तु एक रसिक आयोजन अवश्य होगा। इन आयोजनों की तैयारियों में छात्रों का अमूल्य समय और उससे भी मूल्यवान् चरित्र कितना नष्ट होता है, इसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं है।

आज विदेशी अतिथि आते हैं, हमारी सभ्यता, विचारधारा और जीवन-निर्वाह के साधन देखने के लिये, परन्तु हम भारत की वास्तविकता को दिखाने की अपेक्षा 'कल्चरल प्रोग्राम' के नाम पर उन्हें दिखलाते हैं अपनी तरुण बहिन-बेटियों का नाच? क्या हमारे पास कोई अच्छी वस्तु दिखाने को नहीं है? क्या हम उन्हें अरविन्द-आश्रम, शान्तिनिकेतन और गुरुकुलों की सैर नहीं करा सकते?

स्वराज्य आने से पहले हम अपने यहाँ के राजा-महाराजाओं की, उनकी सुरा, सुन्दरी और विलासिता की निन्दा करते थे, परन्तु क्या आज सरकारी मन्त्रियों और अधिकारियों के द्वारा इन्हीं बातों को प्रोत्साहन नहीं दिया जा रहा है? अंग्रेजों के शासनकाल में भी कभी किसी स्कूल या कालेज में बालिकाएँ नहीं नचायी जाती थीं। सन् 1947 ई0 में कांग्रेस गवर्नमेंट आने पर बहुत-से रसिक लोग मन्त्रियों की कृपा से सरकारी शिक्षा-समितियों में घुस पड़े और उन्होंने शिक्षा-कार्यक्रमों में बालिकाओं को नचाना आरम्भ किया। पहले केवल छोटी बालिकाएँ ही नाचती थीं, पर एक बार जो लज्जा का पर्दा हटा कि वे ही छोटी बालिकाएँ बड़ी होकर भी निःसंकोच जनता के सामने नाचने और नचायी जाने लगीं तथा हमारे राज्यमंत्री और अधिकारी बड़े शौक से उन्हें देखने लगे। परिणाम यह हुआ कि स्कूलों की युवती बालिकाएँ जनता के सामने और बारातों में बरातियों के सामने नाचने लगीं। इस प्रकार हमारे मन्त्री इस पतन के जिम्मेदार हैं।

हम माननीय मन्त्रियों से निवेदन करते हैं कि वे कालेज और स्कूल की बालिकाओं का नाच देखना बन्द कर दें और आदेश जारी करें कि सरकारी अधिकारी इन नाचों को न देखें और न कभी इनका आयोजन करायें। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि यदि मन्त्री लोग और उच्चाधिकारी इन नाचों का देखना तथा कराना बन्द कर दें तो इन वयस्क बालिकाओं का नाचना, जो पेशेवरों की हद को पहुँचाता जाता है, बन्द हो जायगा और समाज में बढ़ती हुई विलासिता और व्यभिचार का प्रवाह रुक जायगा।

जो लोग इन नाचों को कराते हैं, चाहे वे माता-पिता हों या शिक्षक हों या सरकारी अधिकारी हों अथवा मन्त्री हों, वे अवश्य ही पापों को प्रोत्साहन देने वाले हैं।

हम साहित्यकारों से निवेदन करते हैं कि वे अपने आयोजनों को रसीला बनाने की लालसा में समाज में विलासिता न फैलने दें और उसके दूषित परिणामों को न आने दें। वे बालिकाओं को जनसमूह में न नचायें।

पत्रकारों ने देश को आजादी दिलाने और देश-सुधार करने में बड़ा काम किया है। वे देश को विलासिता की बुरी दशा में जाने से रोक सकते हैं-हम आशा करते हैं कि वे शीघ्र इस ओर ध्यान देंगे।

हम शिक्षकों और शिक्षिकाओं से निवेदन करते हैं कि कृपया वे बालिकाओं को नाचना न सिखायें और उनका जीवन विलासिताप्रिय न बनायें। ❁

बालकों को शिक्षा

रचयिताः रामचन्द्र शास्त्री 'विद्यालंकार'

माता और पिता की सेवा करना परम धर्म मानो,
सिद्धि इसी से तुम्हें मिलेगी, जीवन में यह सच जानो।
कहो न चुभती बात किसी को, कभी न जीव सताओ तुम,
कभी न रूठो, कभी न अकड़ो, जीवन सरल बनाओ तुम॥ 1॥

ल्यारी का-सा निज स्वभाव मत होने देना जीवन में,
नटखट मत बनना, रखना गुरु-ईश्वर-देश-भक्ति मन में।
केवट बनना भारत-नौके, शुभ सच्ची धुन के होना,
बातों या गप्पों में अपना व्यर्थ न पल भी तुम खोना॥ 2॥

लड़को! आपस में मत लड़ना, दुर्व्यसनों से रहना दूर,
कर्मठ, उत्साही, मृदुभाषी, बनना सभ्य, सुजन अरु शूर।
अंकेश में अपने पूज्यों के रहकर व्यवहारज्ञ बनो,
कला, ज्ञान, विज्ञान, नीति, सत्-शिक्षा के मर्मज्ञ बनो॥ 3॥

गीत, नाच, फैशन, बहुव्यय से बचो, ग्राह्य सब गुण ले लो,
ताश तथा चौपड़, चरभर, शतरंज वगरह मत खेलो।
प्रेम, सत्य, औदार्य, शीलता, दया, धैर्य अपनाओ तुम,
सच्चरित्र, निर्भीक, मनस्वी, धर्मात्मा बन जाओ तुम॥ 4॥

गो द्विज-देश-जाति-रक्षक बन करना अपना उज्ज्वल नाम,
रत्न देश के कहलाओ तुम, ऐसे ऊँचे करना काम।
खल की संगति कभी न करना, सज्जन-संगति में रहना,
पुत्र कहा कर भारत माँ के, इसकी अपकृति सहना॥ 5॥

रच सत्काव्य समाज-हृदय में भरना तुम नित नूतन भाव,
कीट-समान न जीना जग में, गुण-संग्रह में रखना चाव।
शिक्षाहीन दीन-दुखियों को शिक्षित कर दुख हरना तुम,
क्षान्तिमान बन इस भारत को लड़को ! सुखिया करना तुम॥ 6॥

सच्ची सीख

सन्त महाराज एक गाँव में सवा सौ मन गुड़ बाँट रहे थे। जब वे एक लड़की को गुड़ देने लगे, तब उसने इन्कार करते हुए कहा–'मैं नहीं लूँगी।'

'क्यों?'– महाराज ने पूछा।

'मुझे शिक्षा मिली है कि यों मुफ्त नहीं लेना चाहिये।'

'तो कैसे लेना चाहिये?'

'ईश्वर ने दो हाथ तथा पैर दिये हैं और उनके बीच में पेट दिया है। इसलिये मुफ्त कुछ भी नहीं लेना चाहिये। यह तो आप मुफ्त दे रहे हैं, जो मजदूरी से मिले वहीं लेना चाहिये।'

महाराज को आश्चर्य हुआ। इसे ऐसी शिक्षा देनेवाला कौन है, यह जानने के लिये उन्होंने पूछा– 'तुझे सीख किसने दी?'

'मेरी माँ ने।'

महाराज उसकी माँ के पास गये और पूछा–'तुमने लड़की को यह सीख कैसे दी?'

'क्यों महाराज? मैंने इसमें नयी बात क्या कही? भगवान् ने जब हाथ–पैर दिये हैं, तब मुफ्त क्यों लेना चाहिये?'

'तुमने धर्मशास्त्र पढ़े हैं?'

'ना'

'तुम्हारी आजीविका किस प्रकार चलती है?'

'भगवान् सिर पर बैठा है। मैं लकड़ी काट लाती हूँ और उससे अनाज मिल जाता है। लड़की राँध लेती है। यों मजदूरी से हमारा गुजारा सुख–संतोष के साथ निभ रहा है।'

'तो इस लड़की के पिताजी ....।'

वह बहन उदास हो गयी और कुछ देर ठहरकर बोली–'लड़की के पिता थोडी आयु लेकर आये थे। वे जवानी में ही हमें अकेले छोड़कर चले गये। यद्यपि वे लगभग तीस बीघे जमीन और दो बैल छोड़ गये थे, तथापि मैंने विचार किया कि इस सम्पत्ति में मेरा क्या लेना–देना है, मैं कब इसके लिये पीसना बहाने गयी थी? अथवा यदि मैं वृद्ध होती या अपंग अथवा अशक्त होती तो अपने लिये सम्पत्ति का उपयोग भी करती, परन्तु ऐसी तो मैं हूँ नहीं। मेरे मन में आया कि मैं इस सम्पत्ति का क्या करूँ? तब भगवान् ने ही मुझे यह सुझाव दिया कि 'यदि यह सम्पत्ति गाँव के किसी भलाई के काम में लगा दी जाय तो बहुत अच्छा हो।' मैं सोचने लगी कि ऐसा कौन–सा कार्य हो सकता है? तत्पश्चात् मेरी समझ में आया कि इस गाँव में जल का बहुत कष्ट है, इसलिये कुँआ बनवा दूँ। मैंने सम्पत्ति बेच दी और उससे

छोटे बालक की सच्चाई

दो छोटे बालक चले जा रहे थे। रास्ते के एक छोटे बगीचे में रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। फूलों की सुगन्ध से सारा रास्ता महक रहा था। यह देखकर एक लड़के ने कहा–'इसमें से थोड़े से फूल मुझे मिल जाते तो मैं चले जाकर अपनी बीमार बहन को देता, वह बहुत खुश होती।' यह सुनकर दूसरे ने कहा–'तो तोड़ क्यों नहीं लेते? तुम्हारा हाथ न पहुँचता हो तो लाओ मैं तोड़ दूँ, मैं तुमसे लम्बा हूँ।' पहले लड़के ने उसका हाथ पकड़कर कहा–'नहीं–नहीं, ऐसा मत करना। चोरी बहुत बुरी चीज है। मैं मालिक से माँग लूँगा।' इतने पर भी दूसरे लड़के ने गुलाब का एक गुच्छा तोड़ लिया। माली ने दूर से उसे तोड़ते देख लिया और दौड़कर पकड़ लिया, मारा और ले जाकर कोठारी में बन्द कर दिया।

इधर पहले लड़के ने दरवाजे पर जाकर पुकारा। अन्दर से एक दयालु बुढ़िया माई ने आकर किवाड़ खोल दिये। लड़के ने कहा–'माँजी! कृपा करके मेरी बीमार बहन के लिये मुझे दो–एक गुलाब के फूल दोगी?' वृद्धा स्त्री ने कहा–'बड़ी खुशी से। बेटा! मैं तुम दोनों की बातें सुन रही थी, तू बड़ा अच्छा लड़का है, चल, तुझे गुलाब का बढ़िया गुच्छा तोड़ दूँ।'

बुढ़िया ने गुलाब तोड़ दिये और कहा–'बेटा! जब–जब तेरी बहिन फूल माँगे, तब–तब आकर ले जाया कर।' इतना ही नहीं, बुढ़िया लड़के की बीमार बहिन से और उसकी माँ से मिलने गयी और उस लड़के को पढ़ने का खर्च देने लगी। जब लड़का पढ़ चुका, तब उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया। सच्चाई का कितना सुन्दर नतीजा है। ❁

मिली हुई रकम एक सेठ को सौंपकर उनसे कहा कि आप इन पैसों से एक कुँआ बनवा दें। सेठ भले आदमी थे। उन्होंने परिश्रम और कोर–कसर करके कुएँ के साथ ही उसी रकम में से पशुओं के जल पीने के लिये हौज भी बनवा दी।'

इस प्रकार उस बहन ने पति की सम्पत्ति का हक छोड़कर उसका सद्व्यय किया। उसे नहीं तो उसके हृदय को तो इतनी शिक्षा अवश्य मिली होगी कि 'मैं जो पति को ब्याही गयी हूँ सो सम्पत्ति के लिये नहीं, अपितु ईश्वर की–सत्य की प्राप्ति के मार्ग में आगे बढ़ने के लिये ब्याही गयी हूँ।' इस प्रकार त्याग, न्याय, परोपकार की समझ तथा संस्कार से बढ़कर और कौन–सी शिक्षा हो सकती है? ❁

अमृत वचन

❁ चिलम भी मिट्टी से बनती है सुराही भी। चिलम स्वयं तपती है, दूसरों को भी तपाती है। सुराही स्वयं शीतल रहती है, औरों को भी शीतलता देती है। 'चिलम नहीं सुराही की तरह बनो'

❁ पुरुषार्थी और परमार्थी बनकर जीवन जीओ, प्रमादी और स्वार्थी बनकर नहीं।

गोमूत्र और गोमय से रोगनिवारण

गाय के मूत्र को गोमूत्र कहते हैं। वैद्यलोग इसका औषधों में बहुत उपयोग करते हैं। यह सौम्य और रेचक है। कब्ज हो गया हो, पेट फूल गया हो, डकरों आती हों, मुँह मिचलाता हो, तो तीन तोला स्वच्छ और ताजा गोमूत्र छानकर आधा माशा नमक मिलाकर पी जाना चाहिये। थोड़ी ही देर में टट्टी होकर पेट उतर जाता है और आराम मालूम होता है। छोटे बच्चों का पेट फूलने पर उन्हें गोमूत्र पिलाया जाता है। उम्र के अनुसार साधारणतः एक वर्ष के बच्चे को एक चम्मच गोमूत्र नमक मिलाकर पिला देना चाहिये। तुरन्त पेट उतर जाता है। पेट के कृमियों को मिटाने के लिये तो गोमूत्र चने के बराबर डीकामाली के साथ मिलाकर प्रातःकाल बच्चे को पिलाया जाय, तो एक सप्ताह में ही कृमि नष्ट हो जाते हैं। बच्चों के डब्बे रोग पर भी कुलथी के काढ़े के साथ गोमूत्र दिया जाता है। बच्चे की दो मुट्ठियों में जितनी समावे, उतनी कुलथी कूटकर और उसमें बच्चे की हथेली के बराबर आक का पत्ता छोड़कर आध सेर पानी में पकाना चाहिये। जब पानी एक छटांक रह जाय, तब उसे छानकर और उसमें उतना ही गोमूत्र मिलाकर पिलाना चाहिये। तीन दिन में ही टट्टी–पेशाब साफ होकर पेट उतरने लगता है और सात दिन में डब्बा रोग अच्छा हो जाता है। (इस रोग में बच्चे का शरीर फूल जाता है, पेट बढ़ जाता है और नाभि ऊपर आ जाती है।)

पेट की हर–एक व्याधि पर गोमूत्र रामबाण है। यकृत या प्लीहा बढ़ गयी हो, तो पांच तोला गोमूत्र नमक मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से थोड़े ही दिनों में आराम मालूम होता है। यकृत या प्लीहा पर गोमूत्र से सेंक भी किया जाता है। उसकी विधि इस प्रकार है–एक अच्छी ईंट आग में गरम कर ली जाय। फिर उस पर गोमूत्र छोड़कर गोमूत्र में भिगोये हुए कपड़े में उसे लपेट लिया जाय और उससे नरम–नरम सेंका जाय। इससे यकृत् या प्लीहा घट जाती है। शरीर खुजलाता हो तो कड़ुवा जीरा गोमूत्र में पीसकर उसका लेप किया जाय और नीम के पत्ते छोड़कर उबाले हुए पानी से नहाया जाय। खुजलाहट बंद हो जायगी। गोमूत्र में बावची को पीसकर रात में कोढ़ के सफेद दागों पर लेप करने और सुबह गोमूत्र से ही धो डालने से कुछ दिनों में दाग मिट जाते हैं। पेट के फूलने पर भी गोमूत्र का सेंक लाभकारी होता है।

यकृत् और प्लीहा के बढ़ने से उदररोग हो गया हो तो पुनर्नवा के काढ़े में आधा गोमूत्र मिलाकर पिलाया जाय, इससे उदररोग अच्छा हो जायगा। इस सम्बन्ध में अक्कलकोट के डाक्टर चाटी अपना अनुभव इस प्रकार बतलाते हैं–'अपनी चालीस वर्ष की नौकरी में मैंने कितने ही जलोदर के रोगियों का इलाज किया। उन्हें अंग्रेजी दवाएँ पिलायी और पेट चीरकर दो, तीन, चार बार भी पेट का पानी निकाल दिया; परन्तु उनमें से अधिकांश रोगियों की मृत्यु हो गयी। मैंने सुना और आयुर्वेदिक ग्रन्थों में पढ़ा भी था कि इस रोग पर गोमूत्र का उपयोग बहुत ही लाभकारी होता है, परन्तु मुझे

विश्वास नहीं होता था। एक बार एक साधु महात्मा ने गोमूत्र के गुणों का बहुत वर्णन करके कहा कि इसका जलोदर पर बहुत अच्छा उपयोग होता है। तदनुसार चार रोगियों पर मैंने गोमूत्र का प्रयोग कर देखा। उनमें से तीन चंगे हो गये। जो चौथा मर गया, वह मुमुर्षु अवस्था में ही मेरे पास आया था। जो अच्छे हो गये, उनमें से एक का ब्योरा इस प्रकार है-सन् 1910 में जब मैं अक्कलकोट राज्य में 'चीफ मेडिकल अफसर' था, तब मुझे जुन्नर गाँव में जरूरी काम से बुलाया गया। वहाँ अप्पण्णा नामक एक तीस वर्ष का बढ़ई जलोदर से आसन्नमरण हो रहा था, उसी का इलाज करना था। रोगी का सब शरीर फूल गया था। न वह कुछ निगल सकता था, न हिल सकता था, और बड़े कष्ट से सांस लेता था। उसके जीने की कोई आशा नहीं बच रही थी। उसे इंजेक्शन देकर शक्तिवर्धक औषधि खिलायी और पेट चीरकर 16 पौंड पानी निकाल दिया, जिससे वह श्वासोच्छ्वास ठीक तरह से करने लगा। पन्द्रह दिन बाद फिर ऑपरेशन कर 14 पौंड पानी उसके पेट से निकाला। अब वह अच्छा हो गया और उसके पेट में फिर पानी जमा नहीं हुआ। पहले दिन से ही उसे मैं एक नीरोग और बलिष्ठ गाय का मूत्र शहद के साथ दिया करता था और एक पौंड गोदुग्ध पिलाया करता था। पन्द्रह दिन बाद दो पौंड दूध देने लगा। इस इलाज से एक ही महीने में वह चंगा हो गया। मैंने इलाज बन्द कर दिया। यद्यपि अब गोमूत्र सेवन के लिये उससे मैंने नहीं कहा था, तथापि वह बराबर गोमूत्र पिया करता था। उसका विश्वास हो गया था कि गोमूत्र से ही मेरे प्राण बचे हैं, इस कारण गोमूत्र-सेवन से वह विरत नहीं हुआ और धीरे-धीरे हट्टा-कट्टा हो गया।

गोमय-माहात्म्य

अग्रमग्रं चरन्तीनामोष धीनां वने वने।
तासामृषभपत्रीनां पवित्रं कायशोधनम्।।
तन्मे रोगांश्च शोकांश्च नुद गोमय सर्वदा।

इस मन्त्र से सिर से पैर तक गोबर लगाकर स्नान करने की श्रावणी कर्म में विधि है। पंचगव्य (दही, दूध, घी, गोमूत्र और गोमय) प्राशन भी श्रावणी में किया जाता है। आधुनिक शिक्षित लोग इस विधि को घृणित और हेय समझते हैं; परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से पंचगव्य का कितना महत्व है, इसका उन्होंने कभी विचार ही नहीं किया है। इस सम्बन्ध में डॉ0 रविप्रताप महाशय ने 'विशाल भारत' में एक लेख लिखा था, उसमें आप लिखते हैं-भारत में अनादिकाल से गोबर का मानवशरीर के लिये ओषधि की तरह उपयोग किया जा रहा है। परन्तु इस बीसवीं शताब्दी में यह जानकर इस दिव्यौषधि का हमने त्याग कर दिया कि यह घृणित, गंदी, आरोग्यविघातक और दुर्गन्धिमय वस्तु है। यहाँ तक कि म्युनिसिलिपिटियों के अधिकारी लोगों को हुक्म देने लगे हैं कि जमीन गोबर के बदले चूने से लीपा करो। आश्चर्य की बात है कि सहज सुलभ और निसर्गदत्त गोबर-जैसी कृमिनाशक वस्तु को त्यागकर महँगे, कृत्रिम और विदेशी जन्तुनाशक द्रव्यों का हम संग्रह कर रहे हैं।

हिन्दूधर्म के प्रायः सभी धार्मिक कार्यों में गोबर का उपयोग किया जाता है। (गोमय प्रदक्षिणमुपलिप्य) इसका कारण भी यही है कि गोबर में रोग के कीटाणुओं का नाश करने का गुण विद्यमान है। प्राचीन ऋषि–मुनियों ने अपनी पर्णकुटियाँ गोबर से लीपकर स्वच्छ रखते थे। वे वस्तु की व्यावहारिक उपयोगिता जानकर उसे धार्मिक स्वरूप दे दिया करते थे, जिससे वह समाज में रूढ़ हो जाय।

इटली वालों की खोज

इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो0 जी0 ई0 बीगेंड ने गोबर के अनेक प्रयोग कर सिद्ध किया है कि ताजे गोबर से तपेदिक और मलेरिया के जन्तु तुरन्त मर जाते हैं। प्रोफेसर महाशय का अनुभव है कि प्राथमिक अवस्था के जन्तु तो गोबर की गन्ध से ही मर जाते हैं। गोबर के इस अलौकिक गुण के कारण इटली के अधिकांश सेनिटोरियामों में गोबर का ही उपयोग करते हैं। इटली में अब भी हैजा या अतिसार के रोगी को ताजे पानी में ताजा गोबर घोलकर पिलाते हैं और जिस तालाब के पानी में हैजे के जन्तु उत्पन्न हो गये हों, उसमें गोबर डालते हैं। उनका अनुभव है कि इससे हैजे के जन्तु तुरन्त मर जाते हैं। गोबर से फोड़ा–फुन्सी, घाव, दंश, चक्कर, लचक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। डॉ0 मैफर्सन ने दो वर्ष तक गोबर का संशोधन कर उसका इतिवृत्त 'न्यूयार्क टाइम्स' में छपाया है। उसमें अनेक सिद्धान्त स्थिर कर उन्होंने यह सिद्ध किया है कि गोबर बढ़कर जीवाणुनाशक कोई दूसरा उपयुक्त द्रव्य नहीं है। उनका कहना है कि गोबर उसी गाय का होना चाहिये, जिसका आहार उत्तम हो और जो नीरोग हो। 'अग्रमग्रं चरतीनाम्' इस मन्त्र का भी यही अभिप्राय है।

गाय आरोग्य देवता है

सतपुड़े के गोंड, भील आदि गोबर का सब कामों में उपयोग करते हैं। अमस्मार, चक्कर, मस्तकविकार, मूर्छा आदि रोगों पर वे गाय के दूध या तिल में गोबर घोलकर पिलाते और इसी का लेप करते हैं। तेल में गोबर मिलाकर मालिश करने से मज्जातन्तु नीरोग हो जाते हैं। वैद्य लोग क्षयरोगियों को गायों के बाड़ों में सुलाने को कहते हैं। क्योंकि गोमूत्र और गोबर की गन्ध से क्षयरोगी के शरीर के क्षयजन्तु मर जाते हैं। क्षयरोगी के पलंग को प्रतिदिन गोबर और गोमूत्र के जल से धो डालना भी लाभदायक होता है। हिन्दूलोग गोबर और गोमूत्र से प्रातःकाल घर के द्वार लीपते हैं। इसका कारण यही है कि दोनों द्रव्य रोगकीट–नाशक हैं। सन् 1934 में मद्रास प्रान्त में हैजे का प्रकोप हुआ। उस समय जो गोबर के गारों में काम करते थे, उन पर हैजे का कोई परिणाम नहीं हुआ। इस अनुभव के अनुसार वहाँ अब वर्षाकाल में सब कामों में गोबर का ही उपयोग किया जाता है। वहाँ के प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि आग से जल जाने या चोट से घाव होने पर गोबर के लेप से अच्छा हो जाता है। खुजली, चकत्ते, ईसव आदि रोग तो गोमूत्र और गोबर के प्रयोग से बात–की–बात में अच्छे हो जाते हैं।

सार्वजनिक विषूचिका–प्रतिबन्ध

श्रावणी कर्म के पंचगव्य–प्राशन की विधि में भी यही उद्देश्य है। आषाढ़–सावन में नया पानी आ जाता है। इससे हैजे की सम्भावना होती है। उसी के प्रतिबन्ध के लिये पंचगव्य प्राशन का प्रारम्भिक उपचार है। खाद्याखाद्य, पेयापेय, स्पृश्यास्पृश्य आदि का विचार न करनेवाले लोगों को ही हैजा हो जाने की अधिक सम्भावना रहती है। इसीलिये धार्मिक प्रक्रियाओं और शुद्धिसंस्कार में पंचगव्य–प्रायश्चित का विशेष महत्व है।

मद्रास के सुप्रसिद्ध डाक्टर किंग कहते हैं– यह अब प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि गाय के गोबर में हैजे के जन्तुओं का संहार करने की विचित्र शक्ति है। गाय के गोबर का शास्त्रीय रीति से पृथक्करण कर, उसका सत्त्व निकालकर उसे जहाँ–जहाँ पानी में डालकर देखा गया, वहाँ की घनी बस्ती में कहीं हैजा नहीं हुआ। डाक्टरों ने अब सिद्ध कर दिया है कि रोगजन्तु–नाश के लिये गोमय का बहुत ही महत्वपूर्ण उपयोग है।

गाय के दही का उपयोग

1. अजीर्णजनित विषूचिका पर गाय का छाछ बराबर भाग मिलाकर पियें।
2. कांच का चूर्ण अनाज के साथ खाया हो तो दही प्रयोग करें।
3. तृष्णा रोग का निदान पुरानी ईंट साफ धोकर आग में डालें खूब लाल हो जाय तब तक गर्म करें फिर दही में डाल दें उस दही को थोड़ा खायें।
4. कनेर के विष पर गाय का दही शक्कर डालकर पिलावें।
5. आधाशीशी सूर्योदय होने के पहले दही और रात तीन दिन तक खायें।

सर्प के विष पर– दही, मधु और मक्खन इन तीनों को तीन–तीन तोले तथा पीपल सोंठ, कालीमिर्च, बच और सेंधा नमक समभाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण बनाकर वस्त्र से छान लें। यह चूर्ण तीन तोला बारह तोले मिश्रण तैयार करें उसमें चार तोले पिलायें। एक मिनट में वमन। दूसरी बार पिलावें जरूरत पड़े तो तीसरी बार पिलायें इस प्रकार तीन बार वमन होकर सर्प विष के प्रभाव से मुक्ति मिल जाती है।

सूजन, व्रण की तीक्ष्ण पीड़ा और दांत के ऊपर– दही को कपड़े में बांधकर पानी निकालकर उसे दर्द वाली जगह पर बांधने से दर्द दूर हो जाता है। शूल तथा दाह मिट जाता है। निकलता हुआ फोड़ा बैठ जाता है और निकल फोड़ा फटकर भर जाता है। ❁

पृष्ठ संख्या 19 का शेष–

टामसन कालेज में भर्ती हो गये। कुछ दिनों बाद इंजीनियर होकर अपनी बात उन्होंने सच्ची कर दी। उसी आफिस के इंजीनियर की कुर्सी पर वे सचमुच आ बैठे।

अपने जीवन की कमाई का अधिकांश उन्होंने दीन–दुखियों की सेवा में लगाया। पचास लाख से भी अधिक द्रव्य इन्होंने विभिन्न संस्थाओं में व्यय किया। विद्यार्थियों की पढ़ाई में इन्होंने बहुत अधिक सहायता की। सरकार ने 'सर' की पदवी देकर इनका सम्मान किया था। ❁

पारिवारिक व्रत एवं आचरण

आइये, अब हम वेद के आधार पर इस विषय पर विचार करते हैं। वेद कहता है कि–

"अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥" –(अथर्ववेद 3/30/2)

अन्वय– पुत्रः पितु.: अनुव्रतः भवतु। पु.: माता सह संमना जाया पत्ये मधुमतीं शान्तिवां वाचं वदतु॥

अर्थ– (पुत्रः) पुत्र (पितु) पिता का (अनुव्रतः) अनुव्रत हो अर्थात् उसके व्रतों को पूर्ण करें। पुत्र (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) उत्तम मनवाला (भवतु) हो अर्थात् माता के मन को सन्तुष्ट करने वाला हो। (जाया) पत्नी के साथ (माधुमतीम्) मीठी और (शान्तिवाम्) शान्तिप्रद (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले।

व्याख्याः– इस वेदमंत्र में वे आरम्भिक साधन बताये हैं जिनसे गृहस्थ सुव्यस्थित रह सकता है। ऊपरी दृष्टि से ऐसा लगता है कि जिन बातों का इस मन्त्र में प्रतिपादन है वे अतिसाधारण और चालू हैं। उनको असभ्य और अशिक्षित लोग भी समझते हैं। उनके लिए वेदमंत्र की आवश्कता नहीं। परन्तु गम्भीर दृष्टि से पता चलेगा कि बहुत सी बातें विचारणीय और ज्ञातव्य है। उदाहरण के लिए दो शब्दों पर विचार कीजिए–एक 'पुत्र' और दूसरा 'अनुव्रतः'। यहां केवल इतनी ही बात नहीं है कि सन्तानों को मां–बाप की सेवा करनी चाहिए और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। यद्यपि जिस किसी ने संसार में सबसे पहले लोगों को यह उपदेश किया होगा, उस समय इतनी छोटी–सी बात भी बहुत बड़ी और अद्‌भुत मालूम होती होगी। आज भी यद्यपि कथन मात्र से इस बात को भी सभी जानते हैं, फिर भी व्यवहार में तो अत्यन्त न्यूनता दिखाई देती है। आज्ञाकारी राम तो कथाओं का ही विषय हैं। व्यवहार में तो जिन घरों में हिरण्यकश्यप नहीं है वहां भी किसी न किसी बहाने से सन्तान प्रहलाद का स्वांग खेलने के लिए उत्सुक रहती हैं। कुछ ऐसे भी मनचले हैं जो ऐसी शिक्षाओं को असामयिक और प्राचीनकाल की दास–प्रथा का प्रतीक समझते हैं। बेटा बाप की आज्ञा क्यों मानें? इस प्रकार प्राचीन आचार शास्त्र के बहुत से छोटे–मोटे नियम हैं जो आजकल भावी विकास में बाधक समझे जाते हैं। यू तो हर मानवी संस्था में समय–समय पर दोष आ जाया करते हैं और उनके सुधार की आवश्यकता होती है। यदि संसार के पिता हिरण्यकश्यप बन जाएं तो ऐसी संस्थाएँ भी प्रशंसा की दृष्टि से देखी जायेंगी जो बालकों में प्रहलाद की भावनाओं का प्रसार करें, क्योंकि परिवार का संगठन तो तभी सुरक्षित रह सकता है जब पिता और पुत्र दोनों धार्मिक हों। कोढ़ी माँ–बाप की सन्तान को उनसे अलग रखा जाता है कि वह कोढ़ दूसरी पीढ़ी में भी न आ जाए। चोर और डाकुओं की सन्तान के भी पृथक्करण की आवश्यकता होती है।

परन्तु ये तो अपवाद मात्र हैं। यह साधारण जीवन का आचार शास्त्र नहीं, अपितु आचार सम्बन्धी अस्पतालों की नियमावली है, जो सामान्य जीवन से कुछ भिन्नता रखती है।

अच्छा! आइये पहले 'अनुव्रत' शब्द पर विचार करें। इसके लिए देखना यह है कि सृष्टिक्रम में सन्तानोत्पत्ति की व्यवस्था क्यों रखी गई? यदि कोई परिवार सन्तानहीन ही लुप्त हो जाए तो क्या हानि है? और यदि एक क्षण में समस्त संसार नष्ट हो जाए तो किसका क्या बिगड़े? परन्तु ये प्रश्न वही कर सकते हैं जो जीव की स्वतन्त्र सत्ता और उसकी आवश्यकताओं पर विचार नहीं करते। परमात्मा ने यह सृष्टि खेल के लिए नहीं बनाई। यह जीव के विकास के लिए बनाई गई है। दुर्गुणों से बचने और सद्गुणों को ग्रहण करने के लिए बनाई गई है। पशु-पक्षियों की बुद्धि इतनी कम है कि उनके आचार की व्यवस्था ईश्वर ने सीधी अपने हाथ में रखी है। जैसे बहुत छोटे बालकों पर बुद्धिमान् पिता उनकी व्यवस्था का भार नहीं छोड़ता, परन्तु विद्वान् और परिपक्व सन्तान अपना विधान आप बनाने में स्वतन्त्र होती है। यही प्रथा पशु-पक्षियों की है। मधुमक्खी को छत्ता बनाने या बया को घोंसला बनाने के लिए किसी इंजीनियरिंग कालेज की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु मनुष्य का बच्चा तो मुंह धोने का नियम भी सीखता है। अतः स्पष्ट है कि मानवजाति के लिए एक आचार शास्त्र चाहिए जो परम्परा से चालू रहे। इसी का नाम व्रत है। अब यज्ञोपवीत दिया जाता है तो एक मन्त्र पढ़ते हैं-

"अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।।" -(यजुर्वेद 1/5)

अर्थात मैं एक व्रत करता हूँ। परमात्मा इस व्रत के पालन में मेरी सहायता करें वह व्रत क्या है? अनृतात् सत्यमुपैमि। असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण। वेदों के पुनरुद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसलिए इस व्रत (सत्य) को विशेष स्थान दिया है। इस नियम पर प्रत्येक मनुष्य के विकास का आधार है। महात्मा गाँधी का समस्त जीवन सत्य की खोज और उसके पालन में व्यतीत हुआ। जिसने सत्य की खोज नहीं की वह सत्य का पालन क्या करेगा? जो लोग 'श्रद्धा' का अर्थ लेते हैं-"सत्य की खोज से संकोच और प्रचलित प्रथाओं या गुरुजनों पर अन्धविश्वास, वे श्रद्धा शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थों से अनभिज्ञ हैं। 'श्रद्धा' दो शब्दों से बनता है, 'श्रत् अर्थात् सत्य और 'धा' अर्थात् धारण करना। अतः श्रद्धा का भी वहीं अर्थ है जो अनृतात् सत्यमुपैमि का। प्रत्येक बच्चे को यह व्रत लेना पड़ता है और यह आशा की जाती है कि आयुपर्यन्त इसका पालन करें। मानवजाति के कल्याण के लिए यह आवश्यक है और हर गृहस्थ को यह व्रत लेना चाहिए।

परन्तु यह परम्परा तो तभी चल सकती है, जब भावी सन्तान पूर्वजों के व्रत का आदर करें। इसीलिए कहा है कि पुत्र को पिता का 'अनुव्रत' होना चाहिए। यह दायभाग में सबसे बड़ी सम्पत्ति है,

जो कोई पिता अपने पुत्र के लिए या कोई आचार्य अपने शिष्य के लिए छोड़ सकता है। 'अनुव्रत' का प्रश्न तो तभी उठेगा जब 'व्रत' होगा। माता-पिता के जो आचरण आकस्मिक या स्वाभाविक रूप से इस 'व्रत' के अन्तर्गत नहीं वे अनुपालनीय भी नहीं है। इसीलिए गुरु उपदेश देता है कि हमारे जो-जो सुचरित हैं वे ही पालनीय हैं (नो इतराणि) अन्य नहीं। व्यक्तिगत घटनाएँ नहीं अपितु वैदिक संस्कृति ही प्रत्येक माता-पिता को करणीय और प्रत्येक पुत्र या पुत्री को अनुकरणीय हैं।

अब 'पुत्र' शब्द के अर्थों पर विचार कीजिए। हर बच्चा जो उत्पन्न होता है पुत्र कहलाने के योग्य नहीं। शास्त्र के विधान से उसको 'पुत्र' बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। सन्तान के लिए संस्कृत में अनेक पर्याय हैं, जैसे- तुक्, तोकं, तनयः, तोक्म्, तक्म, शेषः, अप्नः, गयः, जाः, अपत्यं, यहुः सूनुः, नपात्, प्रजा, बीजम् अति पंचदश अपत्यनामानि (निघण्टु 2 /2)। परन्तु पुत्र का एक बिशेष अर्थ है। यास्काचार्य ने निरुक्त में पुत्र शब्द की यह व्यत्पत्ति दी है-'पुत'+ त्र'। पुत् नाम है नरक का। नरक से जो रक्षा करे, उसे पुत्र कहते हैं। मनुस्मृति में भी यही कहा है-

"पुंनाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥
पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते।
दौहित्रोपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत्॥" -(मनुस्मृति 9/138, 139)

'पुत' अर्थात् नरक से जो तारे वह है पुत्र। पुत्र के अन्तर्गत लड़के और लड़की तो आते ही हैं, इनके लड़के-लड़कियाँ भी आते हैं, क्योंकि वे सब ही नरक से तारने वाले हैं।

यह नरक त्राण क्या है, इस पर विचार करना चाहिए। पौराणिकों ने नरक को एक स्थान विशेष माना है जहां पापी लोग जाते हैं और यदि पुत्र मृतकों का श्राद्धतर्पण करता है तो उसके पितृगण नरक से छूटकर स्वर्ग में चले जाते हैं। यह बात वैदिक कर्मफलवाद के सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध हैं। फिर प्रश्न है कि पुत्र पिता को नरक से कैसे छुड़ाता है।

कोई मनुष्य एक जन्म में पूर्ण विकास या परमपद को प्राप्त नहीं हो सकता इसके लिए जन्म-जन्मान्तर का अभ्यास आवश्यक है। यह पुनर्जन्म के द्वारा होता है। जो आज बाप कहलाता है वह कल बेटा होगा। जिसको अगली पीढ़ी कहते हैं वह पिछली पीढ़ी हो जायेगी। और अगली पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा का भार उसी पीढ़ी पर होगा। आज मैं और मेरे समवयस्क पितृश्रेणी में हैं। उनके ऊपर सन्तान की शिक्षा का भार है। कल हम मरकर बच्चे होंगे और जिनको हम पुत्र-पौत्र कहते हैं, वे पितृगण कहलायेंगे और हमारी शिक्षा का भार उन पर होगा। यह पिता-पुत्र का सम्बन्ध अनादि काल से प्रवाह चक्र के समान चला आता है। यदि हमारी सन्तान ने हमारी सुरक्षित संस्कृति को अपने हाथ में लेकर उसे

मानस में नारी की निन्दा या प्रतिष्ठा

लेखकः रामस्वरूप आर्य, एटा (उ. प्र.)

मान्यवर! रामचरितमानस एक काव्य है। काव्य लेखक उसके पात्रों के अनुरूप ही उनका चरित्र–चित्रण करता है। ठीक वैसा ही श्री गोस्वामी जी महाराज ने किया है। कोई अतिशयोक्ति नहीं है। प्रायः कुछ लोगों का विचार है कि गोस्वामी जी महाराज ने नारी की भरपेट निन्दा की है। हम रामचरित मानस के कुछ सन्दर्भों को आपकी सेवा में उद्धृत करके दिखाते हैं कि नारी का गोस्वामी जी महाराज की दृष्टि में कितना सम्मान है।

आगे उन प्रसंगों को उद्धृत करेंगे जिन पर लोग आपत्ति करते हैं। सर्वप्रथम गोस्वामी जी महाराज के (नारी) सम्मान को उन्हीं की विदुषी पत्नी रत्नावली से प्रारम्भ करते हैं। येन केन प्रकारेण गोस्वामी जी महाराज अपनी सुसराल आते हैं। वर्षा का समय है। रत्नावली तथा सभी परिवारीजन गाढ़ निन्द्रा में निमग्न हैं। श्री तुलसीदास जी अपनी पत्नी के वियोग को सह नहीं पा रहे हैं। अन्ततोगत्वा रत्नावली को पहचान कर चादर झटक कर कहा प्रिये रत्नावली। रत्नावली प्रियतम को पहचान कर आश्चर्य चकित होकर बोली आधी रात के घोर अन्धकार में आप यहाँ कैसे आ गये? जब सारी परिस्थितियों को श्री तुलसीदास जी से सुना और समझा तो चरणों में नतमस्तक होकर रत्नावली ने कहा प्रियतम इतना नारी मोह ठीक नहीं है। कोई पति–पत्नी को पत्नी के कारण प्यार नहीं करता अपने लिये करता है। प्रियवर जितना प्यार आप मुझे करते हैं इतना यदि ईश्वर के साथ करने लगें तो आप का संसार में यश हो जाय। कितनी उच्चकोटि की आध्यात्मिक दृष्टि है, रत्नावली की। मात्र इसी एक वाक्य ने तुलसी का मोह भंग कर दिया और कहा एक बार पुनः इसी वाक्य हो दुहरा दो, रत्नावली ने पुनः ईश्वर प्रेम का सन्देश दिया, फिर क्या था नारी के उपदेश से जो मात्र तुलसी थे अब संत तुलसीदास बन गये, और नतमस्तक होकर पत्नी को गुरु कहा, माँ कहा, और अन्तिम विदा ली। उनके शब्दों में पढ़ें नारी का सम्मान। सीता के विरह में श्री राम जी अत्यन्त विह्वल हैं।

चौ0 चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ।।
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोर करत हहिं निंदा।।
हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं।।
संग लाइ करिनी करि लेंही। मानउ मोहि सिखावन देंही।।
देखउ तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा।।
लछिमन देखउ काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह के जगलीका।।

तुम्हारा कर्तव्य

पालो व्रत ब्रह्मचर्य, विषै–वासनाएँ त्याग, ईश्वर के भक्त बनो जीवन जो प्यारा है।
उठिये प्रभातकाल रहिये प्रसन्न–चित्त, तजो शोक–चिन्ताएँ जो दुख का पिटारा है।।
कीजिये व्यायाम नित्य भ्रात! शक्ति–अनुसार, नहीं इन नियमों पै किसी का इजारा है।
देखिये सौ शरद औ कीजिये सुकर्म 'रमा' सदा स्वस्थ रहना ही कर्तव्य तुम्हारा है।।

लाँघ गया पौन–पूत ब्रह्मचर्य से ही सिंधु, मेघनाद मार कीर्ति लखन कमाई है।
लंका–बीच अंगद ने पाँव जब रोप दई, हटा नहीं सका जिसे कोई बलदाई है।।
पाला व्रत ब्रह्मचर्य राममूर्ति–गामा ने भी, देश और विदेशों में नामवरी पाई है।
भारत के वीरो! तुम ऐसे वीर्यवान बनो, ब्रह्मचर्य–महिमा तो वेदन ने गाई है।।

❀❀❀

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन–जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/– एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/– एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार–प्रसार जन–जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

–धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या–

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F S C Code- IOBA 0001441

'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या– 144101000002341

दान हेतु– श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या– 144101000000351

कहाँ गये थे आदर्श महान ?

प्रस्तुतकर्त्ताः– हरिदत्त शास्त्री

कहाँ गये थे आदर्श महान–कहाँ गये थे आदर्श महान्॥
सारी दुनियाँ में जिस से थी, भारत की ऊँची शान॥ कहाँ गये ....
अलग–अलग कोई धर्म नहीं था, अन्ध विश्वास और भ्रम नहीं था।
वेदों के अनुकूल थे सब, प्रतिकूल कोई कर्म नहीं था।
ना जाति–पाँति बीमारी थी, आपस में रिश्तेदारी थी।
गुण–कर्मों के अनुसार, चार वर्ण में दुनियाँ सारी थी।
मानवों का धर्म एक था, और एक ही था भगवान॥ कहाँ गये ....
चरित्र भी इतना आला था, गया मान जिसे पड़ा पाला था।
खुले किवाड़ों सोते थे, ना ताली थी, ना ताला था।
परनारी और पर धन से, त्याग भावना थी मन से।
चोरी चारी जुआ, जामनी, दूर थे हर एक वतन से।
गुरू मान कर आन–आन कर पूज रहा था सकल जहान॥ कहाँ गये ....
हिन्दू–मुस्लिम सिख–ईसाई ऐसी थी कोई नहीं जुदाई।
शुभ कर्मों से प्यार था, सब को मानव–मानव थे भाई–भाई।
भारत में ही महाभारत, भारत को कर गया गारत।
अनेकों मत और पन्थ पनप गये, अपना–अपना स्वार्थ।
अपने भूले, असल कर्म कर, ऊल, जलूल रहा इन्सान॥ कहाँ गये ....
कुकर्मों से डरते थे, ना अनुचित लालच करते थे।
अपने को दुःख में देकर, दुःख औरों का हरते थे।
जान पर अपनी खेल गये, फाँसी खाई, जेल गये।
आन–बान और शान की खातिर, जो आई मुसीबत डोल गये।
देश धर्म को अर्पण कर गये हँस–हँस करर न्यौछाबर प्राण॥ कहाँ गये ....
राह सुधारक तज चेतन, मानव–दानव रहा है वन।
मनुष्य और पशु–पक्षी आदि खतरे में सब का जीवन।
हा–हाकार चहुँ और हुआ, दुनियाँ में हर द्वार हुआ।
वेद धर्म के बिन मानव का मस्तिक कुछ और हुआ।
नहीं सुरक्षित आज किसी की, धन इज्जत, सम्पति जान॥ कहाँ गये ....

❀❀❀

चौधरी पूर्व अध्यक्ष जिला पंचायत मथुरा, श्री दीपक चौधरी, श्री राजेश चौधरी, ब्लाक प्रमुख नौझील मथुरा, श्री डॉ0 अमरचन्द्र, श्री डॉ0 अमरसिंह कोसी, श्री रघुनाथ वकील, श्री प्रमोद यादव एडवोकेट, श्री योगेश यादव बरारी, श्री योगेश यादव मथुरा, श्री रमेशचन्द्र आर्य पार्षद मथुरा, श्री वीरेन्द्र अग्रवाल पूर्व चेयरमैन, श्री रघुवीर जी बलरई, श्री सत्यप्रिय आर्य, श्री डॉ0 सत्यमित्र मथुरा, श्री चन्द्रप्रकाश भोगांव, श्री स्वदेश यादव औरैया, दिल्ली, बदायूँ, भरतपुर, अलवर, जयपुर, रेवाड़ी, महेन्द्रगढ़, मेरठ, मुजफ्फरनगर, ग्वालियर, अजमेर, जयपुर, जीन्द, पानीपत, फरीदाबाद, पलवल, सम्भल, हरदोई, फर्रुखाबाद आदि स्थानों से लोगों ने उत्साह सहित भागीदारी की। कोरोनाकाल में भी हजारों की संख्या में उपस्थिति यह बता रही थी कि लोगों में आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द महाराज के प्रति कितनी श्रद्धा और समर्पण है, यह काफी सुखद है। आज भी विपरीत भयानक परिस्थिति में आर्यसमाज ही एक आशा की किरण है क्योंकि आर्यसमाज निर्भ्रान्त ज्ञान वेद पर अवलम्बित है। वेदज्ञान ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। अतः उसमें भ्रम की स्थिति नहीं इसलिए यह ज्ञान ही संसार का कल्याण मार्ग तक ले जाने में समर्थ है। आवश्यकता केवल जनमानस तक इस वेदज्ञान को पहुंचाने मात्र की है। जिसके लिए आर्यसमाजकृत संकल्प होकर अहर्निश प्रयत्नशील है। चारों वेदों से पारायण यज्ञ इसी उद्‌देश्य को लेकर किया जाता है जिससे कि लोग अधिक से अधिक संख्या में जुड़ें तथा वेदज्ञान और उसकी परम्पराओं को समझें तथा अपने परिवार को उस परम्परा विदित करके अज्ञान अन्धकार से निकलकर सुखद वैदिकपथ के अनुगामी बनें।

यज्ञ के समापन के दिन समस्त कार्यक्रम के सूत्रधार वेदमन्दिर मथुरा और गुरुकुल वृन्दावन के उत्थान में निरन्तर लगे रहनेवाले श्री कृष्णवीर जी शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी श्री सरोज शर्मा ने मुख्य यजमान की भूमिका निर्वहन किया। श्री शर्माजी सर्वप्रथम श्री दिनेश जी शर्मा अध्यक्ष संस्कृत एकेदमी हरियाणा का शाल समर्पित स्वागत किया। सभी संन्यासियों व वानप्रस्थजनों को शर्माजी ने अपनी ओर शाल और दक्षिणा प्रदान कर सम्मानित किया उसके बाद सभी उपदेशकों का माननीय शर्माजी वस्त्र और दक्षिणा देकर सम्मानित किया। ट्रस्ट के समस्त पदाधिकारी श्री सत्यप्रकाश जी प्रधान तथा श्री बृजभूषण अग्रवाल मन्त्री सहित सभी का सर्वात्मना योगदान एवं आशीर्वाद रहा।

पूर्ण श्रद्धासहित लोगों ने पूर्णआहूति और वैदिक विचारों का श्रवण किया और स्वयं सुधरने और संसार में वैदिक धर्म के प्रचार करने का व्रत लिया। शान्तिपाठ के साथ समापन हुआ। यज्ञप्रसाद भी हजारों की संख्या में उपस्थित श्रद्धालुओं ने पूर्ण अनुशासन के साथ एक दूसरे का सहयोग करते हुए किया; इसके लिए सभी प्रशंसा के पात्र रहे। ईश्वर करे ऐसी श्रद्धा आर्यों में सर्वत्र फैल जाये जिससे संसार का कल्याण हो। ❋

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	मील का पत्थर	20.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	भ्रांति दर्शन	20.00	सच्चे गुच्छे	8.00
शंकर सर्वस्व	120.00	शान्ता	20.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	संध्या रहस्य	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	8.00
शुद्ध कृष्णायण	80.00	गीता तत्व दर्शन	20.00	मानव तू मानव बन	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	गृहस्थ जीवन रहस्य	20.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
वैराग्य दिवाकर	50.00	श्रीमद् भगवत गीता	20.00	गायत्री गौरव	5.00
नित्य कर्म विधि	45.00	आर्यों की दिनचर्या	20.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
विदुर नीति	40.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	15.00	जीजा साले की बातें	5.00
चाणक्य नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	15.00	विषपान और अमृत दान	5.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	महिला गीतांजलि	15.00	पंचाग के गुलाम	5.00
दो मित्रों की बातें	35.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियां (प्रेस में)	
वेद प्रभा	30.00	बाल मनुस्मृति	12.00	ऋषि गाथा	4.00
शान्ति कथा	30.00	ओंकार उपासना	12.00	सर्प विष उपचार	4.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	पुराणों के कृष्ण	12.00	चूहे की कहानी	4.00
यज्ञमय जीवन	30.00	दादी पोती की बातें	10.00	उपासना के लाभ	4.00
दो बहिनों की बातें	30.00	दण्डी जी का जीवन पथ	10.00	भगवान के एजेन्ट (प्रेस में)	
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	नमस्ते ही क्यों	10.00	दयानन्द की दया	3.00
चार मित्रों की बातें	20.00	आदर्श पत्नी	10.00	शंकराचार्य और मूर्ति पूजा	3.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	क्या भूत होते हैं (प्रेस में)		शांति पथ	2.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2021 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

Yogendra # 9927136600

मुद्रक : स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित